BAMM(N)-221

भारतीय संगीत सिद्धान्त–माइनर वोकेशनल
चतुर्थ सेमेस्टर

संगीत में स्नातक (बी0ए0) माइनर वोकेशनल

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMM(N)- 221

भारतीय संगीत सिद्धान्त

संगीत में स्नातक (बी0ए0) माइनर वोकेशनल

चतुर्थ सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,

हल्द्वानी–263139

फोन नं0 : 05946–286000/01/02

फैक्स नं0 : 05946–264232,

टोल फ्री नं0 : 18001804025

ई–मेल : **info@uou.ac.in**

वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

अध्ययन मंडल समिति

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

संयोजक
निदेशक– मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रो0 पंकजमाला शर्मा (स.)
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय,चंडीगढ़

डॉ0 विजय कृष्ण (स.)
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0मल्लिका बैनर्जी (स.)
संगीत विभाग,
इग्नू, नई दिल्ली

प्रदीप कुमार (स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांई (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रकाश चन्द्र आर्या (आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रूफरिडिंग एवं फार्मेटिंग

डॉ0 जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

इकाई लेखन

1.	डॉ0 वन्दना जोशी	इकाई 1
2.	डॉ0 जगमोहन परगांई	इकाई 2, 3,
3.	डॉ0 रेखा साह	इकाई 4
4.	डॉ0 अशोक चन्द्र टम्टा श्री प्रदीप कुमार	इकाई 5
5.	डॉ0 विजय कृष्ण,	इकाई 6

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2025
प्रकाशक : निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल **: books@uou.ac.in**

नोट– इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण सत्र न्यायालय–हल्द्वानी अथवा उच्चन्यायालय–नैनीताल में किया जाएगा। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

BAMM(N)-221

भारतीय संगीत सिद्धान्त
संगीत में स्नातक (बी0ए0) माइनर वोकेशनल
चतुर्थ सेमेस्टर

इकाई 1– नाद, ग्राम, मूर्छना,जाति गायन,निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वांग वादी राग, उत्तरांग वादी राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग । पृ0सं0 1–15

इकाई 2– पाठ्यक्रम के रागों भूपाली एवं देश का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना। पृ0सं0 16–21

इकाई 3 – नाट्यशास्त्र एवं संगीत रत्नाकर ग्रन्थों का संक्षिप्त अध्ययन । पृ0सं0 22–34

इकाई 4 – संगीत सम्बन्धी विषयों पर निबंध । पृ0सं0 35–43

इकाई 5 –पाठ्यक्रम के रागों भूपाली एवं देश में छोटा ख्याल/रज़ाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना । पृ0सं0 44–54

इकाई 6– पाठ्यक्रम की तालों एकताल एवं कहरवा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों एकताल एवं कहरवा ताल के ठेकों को दुगुन व चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना। पृ0सं0 55–63

इकाई 1 – नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादि राग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्द
1.3.1 नाद 1.3.2 ग्राम 1.3.3 मूर्च्छना
1.3.4 जाति गायन 1.3.5 निबद्ध गान 1.3.6 अनिबद्ध गान
1.3.7 शुद्ध राग 1.3.8 छायालग राग 1.3.9 संकीर्ण राग
1.3.10 पूर्वान्गवादि राग 1.3.11 उतरान्गवादि राग
2.3.12 परमेल प्रवेशक राग 1.3.13 संधि प्रकाश राग
1.4 सारांश
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम माइनर वोकेशनल कोर्स (बी0ए0एम0एम0(एन)—221) की प्रथम इकाई है।

इस इकाई में भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादि राग, उतरान्ग वादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को विस्तार से समझाया गया है। इन शब्दावलियों के माध्यम से हमें संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में सरलता होगी।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादिराग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को समझ चुके होंगे। इन शब्दों को समझने के पश्चात आपको संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में आसानी होगी।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :—

- भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों को समझ सकेंगे।
- संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में आसानी होगी।
- इन मूलभूत शब्दों व इनके अन्तर को समझ कर, अपने गायन अथवा वादन में इनका सही प्रयोग कर सकेंगे।

1.3 भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्द

1.3.1 नाद – संगीतोपयोगी ध्वनि को 'नाद' कहते हैं। संगीत शास्त्रियों ने नाद को 'ब्रह्म' की संज्ञा दी है। नाद से ही संगीत के मूल आधार 'स्वर' की उत्पत्ति मानी गयी है। संगीत की मूल सम्पत्ति नाद को ही माना गया है। साधारणतया हम देखते हैं कि किसी भी वस्तु से ध्वनि तभी उत्पन्न होती है, जबकि उसमें किसी प्रकार का कम्पन्न या आन्दोलन होगा। यदि ये कम्पन्न या आन्दोलन नियमित रूप से हो, तब इससे उत्पन्न ध्वनि का उपयोग संगीत के लिए किया जा सकता है। परन्तु सभी प्रकार के आन्दोलनों से उत्पन्न ध्वनि संगीत के लिए कभी उपयोगी नहीं हो सकती हैं तथा जो ध्वनि संगीत हेतु महत्वपूर्ण या उपयोगी न हो, उसे हम शोर या कोलाहल की संज्ञा दे सकते हैं। नाद से ही स्वर की उत्पत्ति मानी गयी है।

एक निश्चित गति तथा नियमित रूप से आन्दोलित ध्वनि, संगीतोपयोगी ध्वनि सिद्ध हो सकती है। नाद की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. **नाद का ऊँचा नीचापन** – उदाहरणार्थ हम दो भिन्न–भिन्न नादों में ऊँचापन तथा नीचापन अंकन करेंगे। जिस नाद की कंपन संख्या कम होगी उसे हम 'नीचा नाद' कहेंगे तथा जिस नाद की कंपन–संख्या अधिक होगी उसे हम ऊँचा नाद कहेंगे। अर्थात यदि एक स्वर (नाद) की कंपन संख्या 100 आन्दोलन प्रति सेकेन्ड है तथा दूसरे स्वर (नाद) की कम्पन संख्या 150 आन्दोलन प्रति सेकेन्ड होगी तो हमें ऐसा मान लेना चाहिये कि 100 आन्दोलन संख्या वाला नाद नीचा है तथा 150 आन्दोलन संख्या वाला नाद ऊँचा है। हम स्वरों के चढ़ते हुए क्रम तथा उतरते हुए क्रम से भी इसे भली भाँति समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ – सा रे ग म प ध नी सां

अर्थात स्वरों के चढ़ते हुए क्रम में नाद हमेशा ऊँचा होता जाएगा तथा स्वरों के उतरते हुए क्रम में (अवरोहात्मक स्वरूप में) नाद सदैव नीचा होता जाएगा। जैसे – सां नी ध प म ग रे सा। यही नाद का ऊँचा–नीचापन है। उपरोक्त उदाहरण से आप भली–भाँति जान गए होंगे कि नाद की प्रथम विशेषता क्या है? नाद का ऊँचा नीचापन किसे कहते हैं?

2. **नाद का छोटा बड़ापन** – आप जानते होंगे कि यदि तानपुरे या सितार के तार को हम धीमे से छेड़ते हैं तो उसमें से बहुत बारीक, हल्की तथा समीप तक सुनायी देने वाली ध्वनि सुनायी देती है। इसके विपरीत यदि हम तानपुरे या सितार के तार को जोर से छेड़ते हैं तो उसमें से तेज ध्वनि तथा अधिक दूरी तक सुनायी देने वाली ध्वनि निकलती है। यही नाद का छोटा–बड़ापन कहलाता है। जो नाद (ध्वनि) कम दूरी तक सुनाई देगा, वह छोटा नाद कहलाएगा तथा नाद (ध्वनि) अधिक दूरी तक सुनायी देगा वह बड़ा नाद कहलाएगा। अब आप परिचित हो चुके होंगे कि नाद का छोटा या बड़ापन क्या होता है?

3. **नाद की जाति एवं गुण** – सम्भवतया आप परिचित होंगे कि प्रत्येक नाद की अपनी एक पृथक जाति, गुण अथवा विशेषता होती है। हम अनुभव करते हैं कि तानपुरे की ध्वनि सितार से भिन्न होती है। वायलिन की ध्वनि सरोद से भिन्न होती है, आदि–आदि। हम किसी भी वाद्य की ध्वनि को सुनते ही जान जाते हैं कि अमुक ध्वनि किस वाद्य से उत्पन्न हुई है। हम जिस विशेषता के कारण, बिना देखे ही, सुनने मात्र से

पहचान जाते हैं कि यह ध्वनि किस वस्तु से अथवा किस वाद्य से उत्पन्न हो रही है, उस विशेषता को ही नाद की जाति एवं गुण कहते हैं।

उपरोक्त से आप भली भाँति समझ गये होंगे कि नाद की जाति एवं गुण क्या–क्या हैं? इसके अतिरिक्त नाद का काल भी महत्वपूर्ण विषय है। आप जानते होंगे कि संगीत में प्रयोग किए जाने वाले प्रत्येक नाद का काल निश्चित होता है। नाद के काल के आधार पर ही माप कर संगीत में विभिन्न लय बनायी जाती हैं। संगीत शास्त्र में एक मात्रा से दूसरी मात्रा तक के काल को नाद का काल कहा गया है।

उपरोक्त विशेषताओं के अध्ययन से आप भली प्रकार जान गए होंगे कि नाद क्या है? संगीत में नाद का क्या महत्व है? नाद की मूलभूत विशेषताएँ कौन–कौन सी हैं?

सर्वप्रथम मतंग ने 'बृहद्देशी' नामक ग्रन्थ में नाद के विषय की विवेचना की है तथा कहा है कि –

ना नादेन बिना गीतं, न नादेन बिना स्वराः।
ना नादेन बिना नृतं, तस्मान्नादात्मकं जगत ।।

अर्थात नाद के बिना न गीत संभव है न ही स्वर और न ही नृत्य संभव है। अतः सारा संसार ही नादात्मक है।

मतंग के अनुसार नाद की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि – वास्तव में नाद और ध्वनि संगीत के उद्गम हैं। नाद शब्द जिन दो वर्णों से मिलकर बना है वह है– 'न' और 'द'। ग्रन्थों के अनुसार इनमें नकार 'प्राणत्व'(वायु) का द्योतक है और 'दकार' अग्नि तत्व का सूचक है। अतः प्राण और अग्नि के संयोग से जिसकी उत्पत्ति होती है, वही 'नाद' रूप है।

उपरोक्त कथनों से आप नाद से भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि नाद क्या है, ये किन दो वर्णों से मिलकर बना है इसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है?

संगीत शास्त्रियों ने नाद तथा ब्रह्म की एकता को स्वीकार किया है। अतः संगीत–ग्रन्थों जैसे– संगीत रत्नाकर, संगीतराज, संगीत मकरन्द, आदि में नाद को ही ब्रह्म शब्द से सम्बोधित कर मंगलाचरण किया गया है। नाद का अर्थ अव्यक्त ध्वनि है।

अलंकार कौस्तुभ के द्वितीय स्तबक में बताया गया है कि नाभिदेश के उर्ध्व भाग में स्थित हृदयस्थान से ब्रह्मरन्धान्त में प्राणसंज्ञक वायु शब्द को उत्पन्न करता है। उसी शब्द को 'नाद' कहते हैं। भरत ने नाट्य शास्त्र में पारिभाषिक रूप से नाद का कुछ विशेष उल्लेख नहीं किया है किन्तु शब्द तत्व के दो रूपों का उल्लेख 'स्वरवान' और 'अभिधानवान' कहकर सांगीतिक शब्द के महत्व को स्वीकार किया है। स्वरवान का अर्थ है ऐसा शब्द जो अपने में पूर्ण हो। अभिधानवान का अर्थ है ऐसा शब्द जो किसी चीज या वस्तु विशेष का बोध कराए। अतः जितनी भी भाषाएं हैं वे सब अभिधानवान कही गयी हैं। इसे मतंग ने क्रमशः नादात्मक और वर्णनात्मक कहा है।

"नकारं प्राणनामानं नादोऽभिधीयते" – प्रस्तुत श्लोक द्वारा संगीतरत्नाकर नामक ग्रन्थ में नाद के अर्थ को स्पष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ में नाद के प्रमुख दो भेदों(आहत तथा अनाहत नाद) का भी उल्लेख मिलता है तथा नाद के तीन गुण धर्म भी बतलाए हैं। मतंग के अनुसार नाद के सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त तथा कृत्रिम पाँच प्रकार माने गए हैं।

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते।
सोऽयं प्रकाशते पिण्डे तस्मातपिण्डोऽभिधीयते।।

अर्थात संगीत रत्नाकर में नाद के दो रूप माने गए हैं — 1. आहत नाद 2. अनाहत नाद। आहत का अर्थ है आघात द्वारा। अतः जो नाद आघात करने से उत्पन्न होता है वह 'आहत नाद' कहलाता है तथा जो नाद बिना आघात के ही उत्पन्न होता है वह 'अनाहत नाद' कहलाता है। आहतनाद संगीतोपयोगी नाद कहलाता है इसके दो प्रकार कहे जा सकते हैं।

1. स्वाभाविक, जो कंठ से उत्पन्न हो।
2. यान्त्रिक, जो किसी कृत्रिम वस्तु के आघात या घर्षण द्वारा उत्पन्न हो। यह ध्वनि वाद्य संगीत में प्रयुक्त होती है, अर्थात तन्त्री वाद्यों के तार छेड़ने पर, अवनद्ध वाद्यों पर हाथ की थाप मारने पर या सुषिर वाद्यों में फूंक मारने पर यह नाद उत्पन्न होता है। संगीत का सम्बन्ध इसी नाद से होता है। मतंग के अनुसार ये पाँच प्रकार के होते हैं—सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त तथा कृत्रिम। जो क्रमशः गुह्रय, हृदय, कंठ, तालु तथा मुख से उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार आप जान गए होंगे कि आहत नाद ही संगीत में प्रयुक्त होने वाला नाद है। यदि हम व्यापक अर्थ में लें तो इसका यह अर्थ होगा कि किसी चीज के भी टकराने से जो ध्वनि उत्पन्न हो, वही आहत नाद है। बिना आघात के उत्पन्न होने वाला 'अनाहत नाद' केवल योगीजन ही सुनकर समझ सकते हैं तथा वे उसी के द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं। मन तथा बुद्धि की साम्यावस्था की स्थिति में ही वह सुना जा सकता है। यौगिक क्रियाओं से मन, बुद्धि एक विशेष अवस्था में पहुँच जाते हैं, तभी अनाहत नाद ध्यानमग्न योगीजन को अनुभव होता है। केवल अनासक्त योगी ही साधना के पश्चात् अनाहत नाद को सुन सकता है अथवा अनुभव कर सकता है। स्पष्ट है कि जो ध्वनि निरन्तर बिना किसी आघात के शरीर के भीतर सुनायी दे, वही 'अनाहत नाद' कहलाता है।

आप भली—भाँति आहत तथा अनाहत नाद के विषय में परिचित हो गए होंगे। नाद कितने प्रकार के होते हैं? संगीत के लिए आहत तथा अनाहत दोनों नादों में से उपयोगी कौन सा नाद है, यह भी जान गए होंगे। आपको ज्ञात होना अति आवश्यक है कि तानपुरे से उत्पन्न वे नाद, जिनसे तारों को मिलाया जाता है, वे मूल नाद कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य नाद मूलनाद की सहायता में उत्पन्न होते हैं वे "सहायक नाद" कहलाते हैं। सहायक नादों को 'स्वयंभू—स्वर' भी कहते हैं क्योंकि ये स्वतः ही पैदा होते हैं। विद्वानों के कथनानुसार प्रत्येक वाद्य में मूलनाद के अतिरिक्त कुछ अन्य सूक्ष्मनाद भी उत्पन्न होते हैं। जिन्हें सहायक नाद या "स्वयंभू स्वर" कहते हैं। स्वयंभू नादों को 'ओवरटोन्स' या "हारमोनिक्स" भी कहते हैं।

सहायक नादों की संख्या उनके उत्पन्न होने का क्रम तथा प्राबल्य प्रत्येक वाद्य प्रकार में एक—दूसरे से भिन्न होते हैं। जैसे तानपुरे के सहायक नाद वायलिन, सरोद, बांसुरी अथवा तबला से भिन्न होते हैं। सहायक नादों को ठीक से सुनने के लिए विशेष अनुभवी कर्णों की आवश्यकता होती है क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। सहायक नाद मूलनाद से दुगुने, तिगुने, चौगुने, पंचगुने, छगुने, अर्थात वैज्ञानिक क्रम में मूल स्वर से 2 : 3 : 4 : 5 : 6 आदि के अनुपात से उत्पन्न होते हैं।

अब आपने जान गए होंगे कि मूल नादों के अतिरिक्त अन्य जो नाद होते हैं, उनको किस नाम से पुकारा जा सकता है? सहायक नाद किसे कहते हैं तथा उनकी उत्पत्ति वैज्ञानिक क्रम में मूल स्वर से कितने—कितने अनुपात से, उत्पन्न होती है? इस प्रकार ज्ञात होता है कि नाद की समस्त विशेषताओं की साधना निरन्तर अभ्यास द्वारा की जा सकती है। नाद की मधुरता के अभाव में संगीत नीरस तथा निर्जीव हो जाता है।

1.3.2 ग्राम – ग्राम का वास्तविक अर्थ है 'समूह'। प्राचीन संगीत में 'ग्राम' का प्रचलन था। संगीत में निश्चित श्रुत्यांतरों पर स्थापित सात स्वरों के समूह को ग्राम कहते थे। सात स्वरों के सप्तक को बाईस श्रुतियों पर भिन्न–भिन्न प्रकार से स्थापित करने को ग्राम कहते हैं। यदि हम "चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडजमध्यमपंचम" के सिद्धान्त से बाईस श्रुतियों पर सात स्वरों की स्थापना करें तो एक ग्राम बन जाता है। अर्थात सात स्वरों को निश्चित श्रुतियों पर स्थापित करने को 'ग्राम' कहते हैं। नारदीय शिक्षा नामक ग्रन्थ में नारद ने तीन प्रकार के ग्रामों का उल्लेख किया है –

(1) षडज ग्राम (2) मध्यम ग्राम (3) गान्धार ग्राम।

भरत ने केवल षड्ज तथा मध्यम ग्राम का ही उल्लेख किया है। मतंग के अनुसार तीसरा ग्राम अर्थात गन्धार ग्राम स्वर्ग स्थित बताया गया है, जिसका आजकल लोप हो चुका है।

शारंगदेव के अनुसार ग्राम की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है– **'ग्राम स्वर समूहः स्यान्मूर्च्छनाऽऽदेः समाश्रयः।'** अर्थात ग्राम स्वरों का वह समूह है, जो मूर्च्छनाओं का आश्रय है।

उपरोक्त बातों से आप परिचित हो गए होंगे कि 'ग्राम' किसे कहते हैं, यह कितने प्रकार के होते हैं।

अब हम षडजग्राम की विवेचना करेंगे। यदि हम सप्तक के सात स्वरों को बाईस श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित करें कि सा–चौथी श्रुति पर, रे–सातवीं श्रुति पर, ग–नवीं श्रुति पर, म–13वीं श्रुति पर, प–सत्रहवीं श्रुति पर, ध–बीसवीं श्रुति पर तथा नि–बाइसवीं श्रुति पर हो, तो "षडज ग्राम" की स्थापना होगी।

षडज ग्राम के स्वरों में से यदि केवल पंचम स्वर की एक श्रुति कम पर स्थापित हो तो 'मध्यम ग्राम' बनेगा। मध्यम ग्राम की विशेषता होती है कि इसे मध्यम स्वर से ही प्रारम्भ किया जाता है। इस ग्राम में मध्यम स्वर को सा मानकर गाया बजाया जाता है। इसको सरल रूप में यदि कहा जाएगा तो ऐसा भी कह सकते हैं कि षडजग्राम का पंचम जो कि सत्रहवीं श्रुति पर है, उसे सोलहवीं श्रुति पर कर दिया जाए तो मध्यम ग्राम की स्थापना हो जाएगी। यदि मध्यम ग्राम को मध्यम स्वर से आरम्भ किया जाए तो श्रुतियों के अन्तर इस प्रकार होंगे– 2, 3, 4, 2, 3, 2, अर्थात् म में 4, प में 3, ध में 4, नि में 2, सा में 4, रे में 3 तथा ग में 2 श्रुतियां होंगी। उल्लेखनीय है कि मध्यम ग्राम का प्रचार प्राचीन काल में था, जो मध्यकाल में आकर प्रचार से हट गया है।

गन्धार ग्राम का लोप प्राचीनकाल से ही होने लगा था। विद्वानों के मतानुसार प्राचीन काल में निषाद ग्राम प्रचलित था जिसे गन्धर्व लोग गाया करते थे। बाद में इसी निषाद ग्राम का नाम गन्धार ग्राम पड़ा। आधुनिक काल में ऊपर वर्णित तीनों ग्रामों में से केवल षड्ज ग्राम ही प्रचार में है।

उपरोक्त अध्याय से आप भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि षडज ग्राम में सा को किस श्रुति पर स्थापित किया गया था, षड्ज ग्राम के स्वरों में से किस स्वर की एक श्रुति कम स्थापित की जाए जिससे मध्यम ग्राम बनेगा, गन्धार ग्राम किस समय में प्रचार में था तथा इसको कौन लोग गाया करते थे।

इस विवेचना से आप जान गए होंगे कि ग्राम क्या है तथा इसमें क्या–क्या विशेष है तथा ग्राम से ही मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति हई है।

1.3.3 मूर्च्छना – निश्चित श्रुतियों के अन्तरों पर स्थापित सात स्वरों के समूह को ग्राम कहते हैं तथा ग्राम के किसी भी स्वर को आधार मानकर, उसके स्वरों पर क्रमिक, आरोह, अवरोह करने को "मूर्च्छना" कहते हैं। प्राचीन काल में ग्रामों से ही मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति की जाती थी। एक ग्राम के सात स्वरों का बारी–बारी से

प्रत्येक को षडज मानकर आरोह–अवरोह करने से विभिन्न मूर्च्छनाऐं बना करती थीं। उदाहरणार्थ, षडज ग्राम के प्रत्येक स्वर को एक–एक करके षडज माना जाए और फिर उसका आरोहावरोह किया जाए अर्थात् पहली मूर्च्छना षडज ग्राम से आरम्भ होकर आरोहवारोह करने पर षडज ग्राम के स्वरों की तरह होगी। प्राचीन ग्रन्थकारों ने स्वर को उसकी अन्तिम श्रुतियों पर स्थापित माना है। दूसरी मूर्च्छना मन्द निषाद को षडज मानकर आरोहावरोह करने से बनेगी। तीसरी मूर्च्छना मन्द्र धैवत को षडज मानकर आरोहावरोह करने पर बनेगी। इसी प्रकार क्रमशः मन्द्र पंचम, मध्यम, गन्धार, ऋषभ स्वरों को सा मानकर आरोहावरोह करने पर अन्य मूर्च्छनाएं भी बनती जाएंगी। तीन ग्रामों से प्रत्येक सात–सात (अर्थात् 21) मूर्च्छनाएं बनती हैं।

चूँकि गन्धार ग्राम का लोप था अतः केवल (7+7=14) चौदह की मूर्च्छनाएं प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार मानी गयी हैं। रागों के स्थान पर प्राचीन समय में जातियां गायी जाती थीं और यह जातियां मूर्च्छनाओं से उत्पन्न होती थी। रागों का प्रचार बढ़ने से 'थाट' शब्द का बहुतायत से प्रयोग होने लगा, अब रागों की उत्पत्ति 'थाट' से मानी जाने लगी है। उपरोक्त वर्णन से मूर्च्छना किसे कहते हैं तथा पहली मूर्च्छना किस ग्राम से उत्पन्न होती है, आप भली–भाँति परिचित हो गए होंगे। आप जान गए होंगे कि षडज ग्राम के सातों स्वर 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2, श्रुतियों की दूरी पर स्थित होते हैं। अतः पहली मूर्च्छना षड्ज से ही प्रारम्भ होगी। अतः इसके अनुसार चौथी पर सा, सातवीं पर रे, नवीं पर ग, तेरहवीं पर म, सत्रहवीं पर प, बीसवीं पर ध तथा बाईसवीं श्रुति पर नि आएगा।

अतः गन्धार व निषाद अपने पिछले स्वर ऋषभ और धैवत से क्रमशः 2–2 श्रति ऊँचे होंगे। हम देखेंगे कि ये दोनों ही स्वर कोमल हो जाएंगे तथा यह मूर्च्छना काफी थाट के समान होगी। इसी प्रकार दूसरी मूर्च्छना में हम मन्द्र नि को सा मानकर षड्ज ग्राम के स्वरों पर क्रमिक आरोह–अवरोह करेंगे, तो ये सातों स्वर क्रमशः 2, 4, 3, 2, 4, 4 और 3 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। यह बिलावल थाट के समान ही होगा।

तीसरी मूर्च्छना में हम मन्द्र धैवत को सा मानेंगे व आरोह अवरोह करेंगे। इससे आपको ज्ञात होगा कि सातों स्वर 3, 2, 4, 3, 2, 4 और 4 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। अतः यहाँ पर रे कोमल तथा पंचम तीव्र मध्यम हो जायेगा। इस मूर्च्छना में रे ग ध व नि स्वर कोमल तथा दोनों मध्यम व पंचम वर्ज्य होने से यह मूर्च्छना किसी भी थाट के समान न होगी।

चौथी मूर्च्छना मन्द्र पंचम से प्रारम्भ होगी अतः इसके सातों स्वर 4, 3, 2, 4, 3, 2 और 4 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। यह मूर्च्छना आसावरी थाट के समान होगी क्योंकि इसके गन्धार धैवत व निषाद कोमल हो जाएंगे। इसी प्रकार आप जान जाएंगे, कि पाँचवीं मूर्च्छना मन्द्र के माध्यम से आरम्भ होने पर सातों स्वर क्रमशः 4, 4, 3, 2, 4, 3 व 2 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे। इसमें केवल निषाद कोमल होगा यह मूर्च्छना खमाज थाट के समान मानी जाएगी।

छठी मूर्च्छना मन्द्र ग से शुरू होगी। उसके स्वर 2, 4, 4, 3, 2, 4, 3 श्रुतियों के अन्तर पर होंगे जो कि कल्याण थाट के समान प्रतीत होगा।

अन्त में हम देखेंगे कि सातवीं मूर्च्छना मन्द्र ऋषभ से प्रारम्भ होगी। उसके सातों स्वर क्रमशः 3 2 4 4 3 2 तथा 4 श्रुतियों के अन्तर पर होने के कारण इसमें रे, ग ध, नि स्वर कोमल होंगे। यह मूर्च्छना उत्तर भारतीय भैरव थाट के समान होगी।

षड्ज ग्राम की मूर्च्छना से उत्तर भारतीय अलग–अलग थाटों की संरचना हुई है। इसी प्रकार मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएं भी ज्ञात की जा सकती हैं। मध्यम ग्राम से भी इसी प्रकार सात मूर्च्छनाएं बन सकती हैं।

आप उपरोक्त विवेचना से भली–भाँति जान गए होंगे कि भिन्न–भिन्न मूर्च्छनाओं को, भिन्न–भिन्न स्वरों से प्रारम्भ करने से विविध थाटों की उत्पत्ति भी होती जा रही है। आप यह जान चुके होंगे कि पहली मूर्च्छना षड्ज से प्रारम्भ होने पर क्रमशः सा रे ग म प ध तथा नि स्वर कौन–कौन सी श्रुतियों पर स्थापित होंगे तथा यह मूर्च्छना किस थाट के समान होगी।

प्रस्तुत अध्याय के माध्यम से हमने मूर्च्छनाओं के विषय में ज्ञान प्राप्त किया है। मूर्च्छनाएँ हमें विभिन्न स्वर सप्तकों की प्राप्ति कराती हैं। प्रत्येक मूर्च्छना के आरम्भिक स्वर का वही महत्व एवं स्थान है, जो मेल सिद्धान्त में 'सा' का है। मूर्च्छना और मेल में एक प्रमुख अन्तर यह है कि जाति या रागों के नाम के आधार पर मूर्च्छना स्थिर नहीं की गयी, जबकि मेल (थाट) में यही व्यवस्था रही है।

उपरोक्त से आप मूर्च्छना के विषय में भली–भाँति परिचित हो गए होंगे।

1.3.4 निबद्ध गान – जो गायन ताल में पूरी तरह बद्ध हो, अर्थात ताल में बंधी हुई रचनाओं को निबद्ध गान कहते हैं। प्राचीन काल में निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध वस्तु, रूपक आदि गायनों का प्रकार प्रचलित होता था, परन्तु आधुनिक काल में निबद्ध गान के अन्तर्गत गीत के निम्नलिखित प्रकार, जिन्हें ताल में बाँधकर गाया–बजाया जाता है, वे निबन्ध गान के अन्तर्गत आते हैं।

ख्याल – ख्याल एक प्रकार का प्रसिद्ध निबद्ध गान है। 'ख्याल' जैसा कि आपको ज्ञात होगा कि यह उर्दू का शब्द है। इसका अर्थ है– 'कल्पना।' अर्थात यह गीत का वह प्रकार है जिसमें गायक गीत के बोलों को लेकर, उसमें कण, मुर्की, खटका, मींड, गमक, आलाप, तान का खुलकर सुन्दरतापूर्वक प्रयोग करता है। ख्याल मुख्यतः दो प्रकार के माने जाते हैं – (1) विलम्बित या बड़ा ख्याल (2) द्रुत या छोटा ख्याल। जो ख्याल धीमी–धीमी गति में गाया जाता है उसे बड़ा ख्याल या विलम्बित ख्याल कहते हैं तथा जो ख्याल तेज गति में गाए जाते हैं उन्हें द्रुत ख्याल या छोटा ख्याल कहते हैं। ख्याल मुख्यतः एकताल, तीनताल, झूमरा, तिलवाड़ा, आडा चारताल आदि तालों में निबद्ध करके गाए जाते हैं। जौनपुर के मुहम्मद हुसैन शर्की 'ख्याल' के आविष्कारक व प्रचारक माने जाते हैं। आप परिचित हो गए होंगे कि ख्याल का शाब्दिक अर्थ क्या है तथा ख्याल के मुख्य कौन–कौन से प्रकार हैं।

ध्रुपद – ध्रुपद के आविष्कारक (पन्द्रहवीं शताब्दी) ग्वालियर के राजा मान सिंह तोमर को माना जाता है। ध्रुपद एक मर्दाना निबद्ध गान है। प्राचीन काल में इसके चार भाग होते थे–स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग। परन्तु आधुनिक काल में इसे दो भागों में ही गाने का प्रचलन है– स्थायी तथा अन्तरा। इस गायन शैली में तानों का प्रयोग नहीं किया जाता है तथा इसके स्थान पर प्रायः नोम्–तोम् का आलाप किया जाता है। ध्रुपद के लिए भारी आवाज वाले गायक विशेष रूप से उत्तम माने होते हैं। ध्रुपद के लिए चारताल अधिक उपयुक्त होती है। प्राचीन काल में ध्रुपद हेतु पखावज की संगत की जाती थी परन्तु आजकल पखावज का स्थान तबले ने ले लिया है। ध्रुपद एक गंभीर प्रकृति का गान है। ध्रुपद में विभिन्न लयकारियों का प्रयोग किया जाता है।

धमार – धमार की गायन शैली निबद्ध गान के अन्तर्गत आती है। इस गान में राधा–कृष्ण की होली का अधिकतर चित्रण मिलता है। धमार धमार ताल में गायी जाती है जिसमें चौदह मात्राएं होती हैं। इसमें ध्रुपद के ही समान अनेक लयकारियां दिखलायी जाती हैं। जैसे दुगुन, तिगुन, चौगुन, अठगुन आदि।

उपरोक्त वर्णन से आप भली प्रकार जान गए होंगे कि ध्रुपद तथा धमार में क्या—क्या विशेष है तथा क्या मुख्य अन्तर हैं।

ठुमरी – ठुमरी श्रृंगार रस की रचना है। यह भी एक प्रकार का निबद्ध गान कहलाता है। इसको टप्पे की तरह उन्हीं रागों में गाते हैं, जिनमें अन्य रागों का मिश्रण सरलता से हो सके। ठुमरी अधिकांशतः जतताल, दीपचन्दी, तीनताल आदि तालों में गायी जाती है। ठुमरी गायन में अनेक प्रान्तों की छाया पड़ती है। बनारस, लखनऊ, महाराष्ट्र, पंजाब, दिल्ली आदि की ठुमरियां अत्यन्त प्रचलित होती हैं।

टप्पा – टप्पा के आविष्कारक शोरी मियां नामक संगीतज्ञ माने गए हैं। यह एक प्रकार का पंजाबी बोल वाला, निबद्ध गान है। इसकी तानें बहुत लम्बी, दानेदार अथवा पेंचदार होती हैं। इसे पीलू, काफी, भैरवी, खमाज आदि रागों में गाया जाता है। इसकी रचनाऐं श्रृंगाररस प्रधान होती हैं।

त्रिवट तथा चतुरंग – जब ताल में प्रयुक्त होने वाले बोलों को किसी राग के स्वरों पर, इच्छित ताल के साथ गाया जाता है। तो वह त्रिवट कहलाता है।

जब गीत के साहित्य की स्थायी में चार पंक्तियां हों और एक पंक्ति में साहित्य हो, दूसरी में सरगम हो, तीसरी में तराने के बोल तथा चौथी पंक्ति में तबले के पटाक्षर हों तो यह रचना चतुरंग कहलाती है।

तराना – तराना में तोम, नोम, तनन, देरे ना, दानी, दिर—दिर आदि निरर्थक शब्दों को गाया जाता है। किसी भी राग के छोटे ख्याल को गाने के बाद इसको, किसी भी ताल में निबद्ध करके गाया जाता है। इसमें विशेषकर तीनताल का प्रयोग होता है। प्रायः यह द्रुतलय के बाद धीरे—धीरे अतिद्रुतलय में गाया जाता है।

भजन – ईश स्तुति परक रचनाएं, जिन्हें तीनताल, कहरवा, दादरा, रूपक आदि ताल में गाया जाता है, भजन कहलाते हैं। भजन में आलाप, तान आदि का प्रयोग नहीं किया जाता है। आवश्यकतानुसार मींड, खटका, कण, मुर्की आदि का प्रयोग किया जाता है। यह एक निबद्ध गान है।

आप अच्छी तरह से जान गए होंगे कि निबद्ध गान किसे कहते हैं तथा इस गान के कितने प्रकार होते हैं।

1.3.5 अनिबद्ध गान – जो गायन बिना ताल के गाया अथवा बजाया जाता है अनिबद्ध—गान कहलाता है। प्राचीन काल में अनिबद्ध गान के प्रकार रागालाप, रूपकालाप, आलप्तिगान आदि प्रचलित थे। आधुनिक काल में राग में आलाप—गायन को अनिबद्ध गान कहा जाता है। अनिबद्ध—गान के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :—

रागालाप – प्राचीन काल में आलाप करने का यही एक ढंग होता था। यह अनिबद्ध गान कहा जाता था। रागालाप के द्वारा राग के प्रमुख इन दस लक्षणों ग्रह, अंश, न्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव, औडव, अपन्यास, मन्द्र व तार को दिखलाया जाता था।

रूपकालाप – प्राचीनकाल में आलाप करने का यह दूसरा प्रकार होता है। इसमें गायक, विभिन्न प्रकार से राग का विस्तार करके राग के स्वरूप को खींचता था। आधुनिक काल में गायन का यह अनिबद्ध प्रकार प्रचार में नहीं है।

आलप्तिगान – प्राचीनकाल में सर्वप्रथम रागालाप होता था। उसके बाद रूपकालाप तथा अन्त में आलप्तिगान होता था। इन तीनों के बाद राग की चीजें अर्थात, प्रबन्ध, वस्तु, रूपक गायी जाती थी। रागालाप के दस लक्षणों के अतिरिक्त आर्विभाव–तिरोभाव भी इसके माध्यम से दिखाया जाता था। आधुनिक काल में गीत का यह अनिबद्ध प्रकार प्रचार में नहीं है।

1.3.6 जातिगायन – 'यथा योगं ग्रामदूयाज्जायन्त इति जातयः।' अर्थात् जाति की उत्पत्ति दोनों ग्रामों से होती है। प्राचीनकाल में मुख्य रूपेण तीन प्रकार के ग्राम होते थे। षडज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा गन्धार ग्राम। गन्धार ग्राम प्राचीनकाल से ही लुप्त माना गया है।

भरतकृत नाट्यशास्त्र में लिखा है कि दो ग्रामों से 18 जातियां उत्पन्न हुईं। षडज ग्राम से सात तथा मध्यम ग्राम से ग्यारह जातियां मानी गयी। इन जातियों को 'शुद्धा' और 'विकृता' जातियों के अर्न्तगत बांटा गया। इनमें से 7 शुद्ध तथा 11 विकृत मानी गयी। षडज ग्राम की चार जातियां– षाडजी, आर्षभी, धैवती तथा नैषादी और मध्यम ग्राम की तीन जातियां गांधारी, मध्यमा तथा पंचमी शुद्ध मानी गयी। ये नाम सातों स्वरों के आधार पर रखे गए। शेष ग्यारह जातियां(3 षडज ग्राम की और 8 मध्यम ग्राम की) विकृत जातियां कही गयी। इस प्रकार कुल 18 जातियां हुई। शुद्ध जातियां वे कहलायी, जिनमें सातों स्वर प्रयोग किए जाते थे। जैसे षाडजी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती आदि, इनमें नाम स्वर, ग्रह, अंश तथा न्यास होते थे। शुद्ध जातियों के लक्षणों में परिवर्तन करने से जैसे न्यास, अपन्यास, ग्रह, अंश, स्वर बदलने से तथा दो या दो से अधिक जातियों को एक में मिला देने से विकृत जातियों की रचना होती थी। जैसे–षाडजी और गन्धारी मिला देने से षड्ज कौशिकी, गन्धारी और आर्षभी को मिला देने से आंध्री विकृत जातियां बनती थीं।

राग और जाति एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द कहे जा सकते हैं। जिस प्रकार आजकल राग गायन प्रचलित है, उसी प्रकार प्राचीन काल में जाति गायन प्रचालित था।

प्राचीन काल में जाति के कुल दस लक्षण माने जाते थे – ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, औडत्व, षाड़त्व, मन्द्र तथा तार। इसे भरत ने 'दशाविधि जाति लक्षण' कहा है। ग्राम से मूर्च्छना तथा मूर्च्छना के आधार पर जाति की रचना हुई है।

उपरोक्त वर्णन से आप भली–भांति 'जाति' शब्द से परिचित हो गए होंगे तथा जान गए होंगे कि भरत के अनुसार षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम से कितनी जातियां उत्पन्न हुई हैं, गन्धार ग्राम का उल्लेख क्यों नहीं मिलता है, जाति के कितने तथा कौन–कौन से लक्षण माने जाते थे तथा भरत ने 'दशाविधि जाति लक्षण' किसे कहा है।

मतंग कृत वृहद्देशी में श्रुति, ग्रह स्वर आदि के समूह से जिस विधा की रचना होती है उसे 'जाति' कहते हैं। **"श्रुति ग्रहस्वरादि समूहाज्जायन्त इति जातयः।"**

आचार्य वृहस्पति के अनुसार रंजन और अदृष्टि अभ्युदय को जन्म देते हुए विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर "जाति" कहे जाते हैं। यहाँ पर विशिष्ट 'स्वर सन्विेश' से तात्पर्य जाति

के उपरोक्त दस लक्षणों से है। कुछ काल के बाद यही लक्षण राग में दिखाए दिए जिससे यह सिद्ध हुआ कि जाति राग की पूर्ण संज्ञा थी। जाति गायन विशुद्ध माना गया और उसे गान्धर्व की श्रेणी में रखा गया जिससे मोक्ष की प्राप्ति मानी गयी तथा राग को संगीतकारों ने देशी संगीत की श्रेणी में रखा जिसका मुख्य प्रयोग जन मन रंजन ही कहा है।

सर्वप्रथम आपको ग्रह और न्यास के विषय में बताते हैं।

ग्रह व न्यास – 'ग्रह और न्यास' स्वरों का हमारे संगीत में अधिक महत्व तो नहीं है परन्तु प्राचीन संगीत में ये महत्वपूर्ण माने गए हैं। जिस स्वर से गीत का आलाप आरम्भ होता था, उसे ग्रह' स्वर कहते थे तथा जिस पर गीत समाप्त होता था उसे न्यास कहते थे। न्यास की व्याख्या इस प्रकार है –
'गीते समाप्तिकृन्यासः'। इसी प्रकार ग्रह की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है – **'गीतादिनिहितस्तत्र स्वरोग्रह इतीरितः।'**

अंश – जाति के प्रमुख स्वर को प्राचीन काल में अंश कहा जाता था। जैसे आजकल किसी राग के प्रमूख स्वर को वादी स्वर कहते हैं उसी प्रकार पहले राग में वादी एक होता था, किन्तु जाति में एक या एक से अधिक अंश स्वर होते थे। कुल मिलाकर 63 अंश स्वर माने जाते थे।

अपन्यास – जिस स्वर पर गीत या वाद्य रचना का मध्य भाग समाप्त होता था वह अपन्यास स्वर कहलाता था। एक जाति में एक से अधिक अपन्यास स्वर भी होने सम्भव थे।

अल्पत्व–बहुत्व – जिन स्वरों का प्रयोग किसी जाति में अल्प होता था। उनका स्थान अल्पत्व माना जाता था। अल्पत्व के दो प्रकार माने गए थे– लंघन अल्पत्व तथा अनाभ्यास अल्पत्व। इसी प्रकार बहुत्व के भी दो प्रकार गाने गए थे– अलंघन बहुत्व तथा अभ्यास बहुत्व।

षाड़त्व–औड़वत्व – किसी जाति में 6 स्वर प्रयोग किए जाने पर षाडत्व और 5 स्वर प्रयोग किए जाने पर उनका स्वरूप औड़वत्व कहलाता था।

मन्द्र तथा तार – प्रत्येक जाति की एक निश्चित सीमा होती थी, जिसके अन्दर गायक या वादक को रहना पड़ता था। मन्द्र स्थान में अंश, न्यास या अपन्यास तक जा सकते थे। इसी प्रकार तार स्थान में अंश स्तर से चौथे, पांचवें तथा सातवें स्वर तक जा सकते थे।

सन्यास व विन्यास – जिस स्वर पर गीत का प्रथम भाग खत्म हो, उसका संवादी स्वर सन्यास कहलता था तथा गीत का अंतिम स्वर विन्यास कहलाता था।

अन्तरमार्ग – जाति के दस लक्षणों का पालन करते हुए तिरोभाव–आर्विभाव दिखाना अन्तरमार्ग कहलाता था।

भरत कालीन जाति गायन के दस लक्षणों से आप भली प्रकार परिचित हो गए होंगे तथा जान गए होंगे कि जातिगायन के दस लक्षण कौन–कौन से हैं, ग्रह तथा न्यास किसे कहा जाता था। यहाँ पर यह बताना भी आवश्यकीय है कि भरतकालीन जाति गायन का विकसित रूप आधुनिक कालीन राग गायन है। प्राचीन काल में जाति गायन होता था तथा आधुनिक काल में राग गायन होता है।

जाति गायन में ग्रह स्वर का बड़ा महत्व था। इस स्वर से ही जाति गायन प्रारम्भ किया जाना आवश्यकीय होता था। जातिगायन में अंश स्वर का प्रयोग राग के 'वादी' स्वर के रूप में किया जाता था। आजकल राग गायन हेतु केवल वादी स्वर महत्वपूर्ण होता है और उसका चौथा या पांचवां स्वर संवादी माना जाता है।

किसी भी जाति का अन्तिम स्वर निश्चित होता था जिसे न्यास स्वर कहते थे। किन्तु आजकल राग गायन का कोई निश्चित अन्तिम स्वर नहीं होता है। आजकल राग गायन में वादी–संवादी स्वरों के अतिरिक्त राग के कुछ स्वरों पर न्यास (ठहराव) करना राग के स्वरूप बचाए रखने हेतु आवश्यक माना जाता है।

जाति गायन में षाडव अथवा औडव जाति बनाई जा सकती थी, परन्तु राग गायन में राग स्वयं सम्पूर्ण होने के अतिरिक्त स्वयं ही षाड़व या औड़व होता है, अतः उनको पुनः षाडव या औडुव बनाना संभव नहीं होगा। आधुनिक काल में औडुव या षाड़व जाति से राग में प्रयुक्त स्वरों की संख्या का बोध होता है। प्राचीन काल में जाति गायन में प्रत्येक जाति की मन्द्र व तार सप्तकों में सीमा निर्धारित थी किन्तु राग–गायन में ऐसा नहीं है। अब पूर्वांग–उत्तरांग प्रधान रागों का प्रचलन है। जातिगायन में 'तिरोभाव–आर्विभाव' क्रिया का प्रयोग जिस अर्थ में होता था, वैसा ही प्रयोग आधुनिक काल में राग गायन में होता है।

इस प्रकार आप भली भाँति उपरोक्त अध्याय के माध्यम से जान गए होंगे कि जातिगायन क्या है, राग गायन और जातिगायन में क्या–क्या अन्तर हैं, जाति गायन कब किया जाता था तथा राग गायन कब प्रचार में आया। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से यह कह सकते हैं कि राग गायन कोई नवीन शैली नहीं है, बल्कि जाति गायन का विकसित रूप है।

1.3.7 शुद्ध राग – सर्वप्रथम हम 'राग' शब्द को स्पष्ट रूप से परिभाषित करेंगे। भारतीय संगीत में राग शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है कि जो रचना स्वर तथा वर्ण से मिलकर बनी हो तथा चितरंजक हो उसे 'राग' कहते हैं। राग के स्वर 'सा रे ग म प ध नि' माने जाते हैं। इन्हें मिलाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। सरगम को स्वरों तथा वर्णों के आधार पर मिलाने पर 'राग' की संरचना हो जाती है। जैसे– "सा, रेग रेग, ग, पग रे ग रे सा" यह एक राग बन सकता है।

प्राचीन काल में सभी रागों को शुद्ध, छायालग तथा संकीर्ण रागों में विभाजित कर दिया जाता था तथा वे राग, जो कि पूर्णतः स्वतन्त्र हों तथा उनमें किसी भी अन्य राग की छाया न आती हो उसे 'शुद्ध राग' कहा जाता था। मतंग और शारंगदेव के ग्रन्थों में रागों के स्वरूपों का वर्णन इस प्रकार मिलता है–

शास्त्रोक्त नियमानतिक्रमेन स्वतो रक्ति हेतुत्वं।
छायालग रागत्वं नामान्य छाया लगत्वेनरक्ति हेतु त्वम्।
संकीर्ण रागत्वं नाम शुद्ध छायालगमिश्रत्वेन रक्ति हेतुत्वम्।।

अर्थात् शुद्ध राग वे राग हैं जिनमें शास्त्रों के नियमों का पूर्णरूप से पालन होता है। छायालग राग वे राग हैं जिनमें किसी अन्य राग की छाया दिखाई देती है तथा संकीर्ण राग वे राग हैं जो शुद्ध व छायालग रागों के मिश्रण से बनते हैं।

फकीरूल्ला के 'राग दर्पण' में शुद्ध राग प्रमुख छः रागों को कहा गया है। शारंगदेव के अनुसार शुद्ध राग एक प्रकार का स्वतन्त्र राग है। आधुनिक दस थाटों के राग 'शुद्ध राग' माने जा सकते हैं। राग कल्याण, राग मुल्तानी, राग तोड़ी आदि पूर्णतः शुद्ध राग कहे जाते हैं।

उपरोक्त वर्णन से आप भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि शुद्ध राग किसे कहते हैं तथा ये कौन–कौन से हैं।

1.3.8 छायालग राग – मतंग तथा शारंगदेव के अनुसार "छायालग राग" वे राग हैं जिनमें किसी अन्य राग की छाया दिखायी देती हो। जैसे राग परज की छाया राग बसन्त में, राग जलधर केदार में दुर्गा की छाया, राग मेघमल्हार में राग सारंग की तथा राग विलासखानी तोड़ी में राग भैरवी की छाया दिखायी देती है। अतः उपरोक्त राग 'छायालग राग' होंगे।

1.3.9 संकीर्ण राग – संकीर्ण राग वे राग हैं जो शुद्ध और छायालग रागों के मिश्रण से बने हैं। राग दर्पण में शुद्ध राग छः माने गए हैं तथा संकीर्ण राग उनकी रागिनी और उनके पुत्ररागों को कहा है। संकीर्ण राग को मिश्रराग भी कहा जाता है। जब एक राग में दूसरा राग मिल जाता है या जब दो या दो से अधिक रागों का मिश्रण किसी राग में दिखाई दे तो वह "संकीर्ण या मिश्र राग" कहलाता है। जैसे राग भैरव बहार में राग भैरव और बहार का मिश्रण है। राग जयन्त मल्हार में राग जैजैवन्ती तथा मल्हार का मिश्रण है। राग अहीर भैरव में राग काफी तथा भैरव का मिश्रण है। इसी प्रकार धानी कौंस में राग धानी तथा राग मालकौंस का मिश्रण है।

1.3.10 पूर्वांगवादी राग – प्रत्येक हिन्दुस्तानी राग दिन अथवा रात्रि में गाया–बजाया जाता है। रागों के समय को निर्धारित करने के लिए कुछ नियम भी हैं जैसे पूर्व राग, उत्तर राग, सन्धि प्रकाश राग, अध्वदर्शक स्वर आदि। पूर्व राग तथा उत्तर राग के नियम के अनुसार भारतीय विद्वानों ने सप्तक के सात स्वरों को दो भागों में बाँटा है। प्रथम भाग "सा रे ग म प" है तथा दूसरा भाग "म प ध नि सां" है। जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में अर्थात् 'सा रे ग म' स्वरों में होता है, उन रागों को दिन के 12 बजे से रात्रि 12 बजे तक गाया–बजाया जाता है तथा ऐसे रागों को पूर्वांगवादी राग कहते हैं। उदाहरणार्थ राग खमाज का वादी स्वर गन्धार (ग) है। अतः यह पूर्व राग कहलाएगा तथा इसको 12 बजे दिन से 12 बजे रात्रि तक गाया–बजाया जा सकता है।

2.3.11 उत्तरांगवादी राग – जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् 'प ध नि सां' स्वर में होता है, उन्हें उत्तरांगवादी राग कहते हैं। ऐसे रागों को रात के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक गाया–बजाया जाता है। उदाहरणार्थ राग भैरवी में धैवत स्वर वादी हैं, इसलिए यह एक उत्तरांगवादी राग है।

1.3.12 परमेल प्रवेशक राग – 'मेल' का तात्पर्य है 'थाट'। जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि जो राग एक थाट से दूसरे थाट में प्रवेश करते हैं, उन्हें परमेल प्रवेशक राग कहते हैं। 'परमेल प्रवेशक' का अर्थ है दूसरे मेल में प्रवेश कराने वाला। ये राग ऐसे समय गाए जाते हैं जब उनके थाट का समय समाप्त होने को होता है तथा दूसरे थाट, जिनमें वे प्रवेश करते हैं, अर्थात् दूसरे थाट से उत्पन्न रागों का गायन काल हो जाता है ऐसे राग 'परमेल प्रवेशक राग' कहलाते हैं। उदाहरणार्थ जैजैवन्ती राग एक परमेल–प्रवेशक राग है। यह राग उस समय गाया–बजाया जाता है जब रात्रि के रे, ध शुद्ध स्वरों वाले रागों का समय समाप्त होता है तथा 'ग–नि' कोमल स्वरों वाले रागों का समय शुरू होता है। राग जैजैवन्ती एक वर्ग के रागों को समाप्त करके दूसरे वर्ग के रागों में प्रवेश कराता है, अतः यह एक परमेल–प्रवेशक राग कहलाता है।

जैसा कि आपको ज्ञात होगा कि भारतीय राग की मुख्य विशेषता है कि उनका गायन काल निर्धारित होता है। परमेल प्रवेशक राग भी अपने समय निर्धारण के अनुसार गाया–बजाया जाता है।

आप उपरोक्त अध्याय से परमेल प्रवेशक राग के विषय में भली–भाँति परिचित हो गए होंगे कि परमेल प्रवेशक राग किसे कहते हैं।

1.3.13 सन्धि प्रकाश राग – हिन्दुस्तानी संगीत में रागों का समय निर्धारित करने के लिए नियम बने हैं। शाब्दिक अर्थानुसार जो राग दिन और रात की सन्धि बेला में गाए–बजाए जाते हैं उन्हें सन्धि प्रकाश राग कहते हैं। सन्धि प्रकाश रागों का समय प्रातः 4 बजे से 7 बजे तक तथा सायं 4 बजे से 7 बजे तक का माना जाता है। अर्थात सुबह तथा शाम को 4 बजे से 7 बजे तक गाए जाने वाले रागों को सन्धि प्रकाश राग कहते हैं। इन रागों में रिषभ (रे) तथा धैवत (ध) स्वर कोमल लगते हैं। जैसे– भैरवी, पूर्वी, कालिंगडा आदि सन्धि प्रकाश राग हैं।

प्रातःकालीन सन्धि प्रकाश रागों के अन्तर्गत राग भैरव, रामकली, राग परज, जोगिया, भैरव के अन्य प्रकार तथा कालिंगडा आदि प्रमुख हैं। **सायंकालीन सन्धि प्रकाश राग** रागपूर्वी, मारवा, धनाश्री, पूरिया तथा राग श्री आदि प्रमुख हैं।

जिन रागों में तीव्र मध्यम की अपेक्षा शुद्ध मध्यम का महत्व कम होता है ऐसे सन्धि प्रकाश रागों में परज प्रमुख है। तीव्र मध्यम का आभास हमें इस बात की सूचना देता है कि अब रात्रि आने वाली है। रात्रि के बढ़ते ही तीव्र मध्यम प्रबल हो जाता है, अतः इस समय राग पूरिया धनाश्री, राग श्री, राग मुल्तानी व यमन राग आदि राग गाए–बजाए जाते हैं।

इस प्रकार हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि शुद्ध मध्यम दिन की सूचना देता है तथा तीव्र मध्यम रात्रि की सूचना देता है। अतः समय–निर्धारण के अनुसार सुबह तथा शाम की सन्धि बेला में ही सन्धि प्रकाश राग गाए–बजाए जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. नाद की मुख्य तीन विशेषताएं लिखिए।
2. नाद के कितने प्रकार होते हैं?
3. ग्राम कितने प्रकार के होते हैं?
4. मूर्च्छनाओं के कितने प्रकार माने गए हैं?
5. ध्रुपद के साथ संगत हेतु किन तालों का विशेष प्रयोग होता है?
6. धमार गायन में किसका वर्णन मिलता है?
7. जाति के कुल कितने लक्षण माने जाते हैं?
8. जिस स्वर से जाति गायन प्रारम्भ किया जाता था, उसे क्या कहा जाता था?
9. जिस स्वर पर गीत की समाप्ति होती थी, वह क्या कहलाता था?

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादिराग, उतरान्गवादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को समझ चुके होंगे। इन सांगीतिक शब्दों को समझने के पश्चात आपको संगीत के शास्त्र एवं क्रियात्मक पक्ष को समझ पाने में आसानी होगी। इन मूलभूत शब्दों व इनके अन्तर को समझ कर आप अपने गायन अथवा वादन में इनका सही प्रयोग कर सकेंगे। भारतीय शास्त्रीय संगीत में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। राग के विभिन्न प्रकारों के अध्ययन के पश्चात रागों के पूर्ण स्वरूप को समझने में भी आसानी होगी।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नाद की मुख्य तीन विशेषताएं हैं– (1) नाद का ऊँचा नीचापन (2) नाद का छोटा–बड़ापन (3) नाद की जाति एवं गुण है
2. नाद दो प्रकार के होते हैं – 1. आहत नाद 2. अनाहत नाद।
3. ग्राम तीन प्रकार के होते हैं– षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा गन्धार ग्राम।
4. मूर्च्छनाओं के चार प्रकार माने गए हैं – शुद्धा, काकली संहिता, अन्तर संहिता तथा अन्तर–काकली संहिता।
5. ध्रुपद के साथ संगत हेतु चारताल व सूलताल का विशेष प्रयोग होता है।
6. धमार गायन में ब्रज की राधा–कृष्ण होरी का वर्णन मिलता है।
7. जाति के कुल दस लक्षण माने जाते है–ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, औडत्व, षाडत्व, मन्द्र व तार।
8. जिस स्वर से जाति गायन प्रारम्भ किया जाता था, उसे 'ग्रह स्वर' कहा जाता था।
9. जिस स्वर पर गीत की समाप्ति होती थी वह 'न्यास' कहलाता था।

1.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, भगवतशरण, हाईस्कूल संगीत शास्त्र।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, प्रभाकर प्रश्नोत्तर।
3. जैन, डॉ0 रेनू, स्वर और राग।
4. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, संगीत शास्त्र दर्पण।
5. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, प्रवीण प्रवाह।
6. भातखण्डे, पं0 विष्णु नारायण, भातखण्डे संगीत शास्त्र।
7. संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस।
8. श्रीवास्तव, श्री हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग 1 व 2*, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
10. परांजपे, श्रीधर, *संगीत बोध*।

1.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान व अनिबद्ध गान का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वांगवादी राग, उत्तरांगवादी राग, परमेल–प्रवेशक राग व सन्धि प्रकाश राग को विस्तार से समझाइए।

इकाई 2– पाठ्यक्रम के रागों भूपाली एवं देशका परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना।

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पाठ्यक्रम के रागों का परिचय
 2.3.1 भूपाली
 2.3.2 देश
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम, माइनर वोकेशनल कोर्स (बी0ए0एम0एम0(एन)–221) के चतुर्थ सेमेस्टर की द्वितीय इकाई है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप भारतीय शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्दों जैसे नाद, ग्राम, मूर्च्छना, जाति गायन, निबद्ध गान, अनिबद्ध गान, शुद्ध राग, छायालग राग, संकीर्ण राग, पूर्वान्गवादि राग, उतरान्ग वादि राग, परमेल प्रवेशक राग, संधि प्रकाश राग को विस्तार से समझ चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में पाठ्यक्रम के रागों का परिचय तथा रागों के मुख्य स्वर समुदाय की सहायता से आप राग कैसे पहचान सकते हैं, यह भी बताया जाएगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पाठ्यक्रम के सभी रागों का विस्तृत परिचय भी जान सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- पाठ्यक्रम के रागों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- विभिन्न स्वर समुदाय की सहायता से राग पहचानने की क्षमता को बढा सकेंगे।
- दिये गये राग परिचय के द्वारा आप राग का सुन्दर प्रयोग कर सकेंगे।

- राग के मुख्य स्वर समूह द्वारा आप राग पहचान सकेंगे एवं इन स्वर समूह के प्रयोग से राग स्थापित कर सकेंगे।
- सम्प्रकृतिक रागों की चर्चा से आप राग को एक दूसरे से अलग कर राग का स्वरूप स्थापित कर सकेंगे।

2.3 पाठ्यक्रम के रागों का परिचय

2.3.1 राग भूपाली

यह राग कल्याण थाट के अन्तर्गत आता है। इसमें सभी स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग में ग स्वर वादी तथा ध स्वर संवादी माना गया है, अतः यह पूर्वांग प्रधान राग है। इस राग का गायन समय रात्रि के प्रथम प्रहर में 7:00 से 10:00 बजे तक माना गया है। इस राग का प्राण स्वर सा तथा न्यास के स्वर सा ग प हैं। इस राग की जाति औडव है क्योंकि इसके आरोह–अवरोह में म और नि स्वर वर्जित हैं। इस राग के निकटवर्ती राग देशकार और शुद्ध कल्याण हैं। इस राग को कर्नाटकी संगीत में मोहन राग कहा जाता है। यह बहुत ही सरल एवं मधुर राग है। नए विद्यार्थियों के गले में इस राग के स्वर आसानी से आ जाते हैं इसलिए इसे राग को प्रारम्भ में सिखाया जाता है। राग भूपाली में गरे साध, सा, रेग, पग, ध प ग रेसा इस प्रकार भूपाली राग मानते हैं। इस राग की प्रकृति मधुर है। इसका आलाप सुन्दर होता है। इस राग को गाते समय राग देशकार को बचाकर गाना चाहिए।

आरोह– सा रे ग प ध सां ।

अवरोह– सां ध प ग रे सा ।

पकड़–गरे साध़, सा रे ग, प ग, ध प, ग रे सा।

स्वर विस्तार

1. सा, सा रे ग परे, ग, सारेग, रेसा, साध़ सा, सारेग, प रे, ग, रे, सा सा
2. रेग, पग, रेगप, धग, पग, रेग रेसा, ध, पधध, सा, सारेगाग, पग, गप, गपध, ग, पग, परे, सा ।
3. सारेग, ध़ सा रे ग पग, सारे गपग, सारे ध़ प़, सा, ध़सा रेग, प ग रेग– स पग, धपग, पप, ध गप ग, गप सांधप, गप ध सां साधपगरेसा ग, पगरेग प, गपधप गप, धसां रेंरें सांध सां सां ध, ध प पग प रेंरे म रे सा ध़सा।

4. गप धप गप धपगप धसां, रेंगं, गंगं रेंगं रेंसां, रेंसां रेंध,ध सां ध ध प, गरेग, रेसा,ध़सा।

5. गगरेगध़सा रे ग प ध ग प ध सां सां सां धप गप धप गरे सा, धग रे, ग, सा ।

2.3.2 राग देश

पंचम वादी अरू रिखब संवादी संजोग।
सोरठ के ही सुरन ते देस कहत हैं लोग।। रागचन्द्रिकासार

यह राग खमाज ठाठ के जन्य रागों में से एक है। यह राग संपूर्ण माना जाता है। इसका वादी स्वर ऋषभ और संवादी पंचम है। कोई–कोई उसे उलटकर वादी पंचम और संवादी ऋषभ मानते हैं। पहला प्रकार अधिक मान्य है। गायन–समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इस राग का स्वरूप सोरठ नामक एक प्रसिद्ध राग के समान दिखाई देता है। प्रायः देस व सोरठ, ये दोनों राग बिलकुल समप्रकृतिक होने के कारण प्रचार में परस्पर मिले हुए दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए ये दोनों राग एक के बाद एक गाने में गायकों को कठिन पड़ते हैं। इस राग में गांधार स्वर स्पष्ट रूप से लिया जाता है, वही स्वर सोरठ में असत्प्राय अथवा ढका हुआ रहता है। इसके आरोह में गांधार व धैवत प्रायः नहीं लेते तथा अवरोह में ऋषभ वक्र रहता है।

थाट	–	खमाज
वादी	–	रे
सम्वादी	–	प
जाति	–	औडव–सम्पूर्ण
समय	–	रात्रि का दूसरा प्रहर

आरोह	–	सा रे म प नि सां।
अवरोह	–	सां <u>नि</u> ध प, म ग, रे ग सा।
पकड़	–	रे, म प, <u>नि</u> ध प, प ध प म ग रे ग सा।
न्यास स्वर	–	सा, रे, प।
समप्रकृति राग	–	सोरठ, तिलक कामोद।

<u>विशेषताएं</u> :–

1. इसके आरोह में शुद्ध और अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग किया जता है। जैसे म प नि सां, रे <u>नि</u> ध प, ध म ग रे।
2. गन्धार तथा धैवत स्वर आरोह में वर्जित होने के बाद भी कभी–कभी राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिए गन्धार और धैवत स्वर आरोह में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–रे ग म ग रे तथा प ध <u>नि</u> ध प ।
3. इस राग में अधिकतर छोटा ख्याल तथा ठुमरियाँ गाई–बजाई जाती हैं।
4. अवरोह में अधिकतर रिषभ वक्र प्रयोग किया जाता है। जैसे म ग रे – ग – नि़ सा।
5. ध, म की संगति बार–बार दिखाई जाती है। इसलिए अवरोह में अधिकतर पंचम को अल्प कर ध म प्रयोग किया जाता है। जैसे– <u>नि</u> ध प, ध म रे, ग – नि़ – सा।

<u>स्वर विस्तार</u> :–

1. रे नि़ –– सा, रे^{ग} म ग रे, ग –– रे नि़ सा, प़ नि़ सा रे सा ––, सा नि़ ध़ प़ प़ नि़ –– सा।
2. सा रे रे म प़, नि ध प, प ध म ग रे ग सा, रे रे म प <u>नि</u> ध प।
3. नि सा रे म ग रे, रे म प म ग रे, रे प– म ग रे, रे म प ध म ग रे, प म ग रे ग – रे नि़ सा।
4. नि़ सा रे म प ध प नि –––– सां –– नि सां, प नि सां रें नि ध प, ध म ग रे, रे म प ध म ग रे, रे ग नि़ सा।
5. म प नि सां–– नि सां, प नि सां, प नि सां रें –– रें नि सां, म प नि सां ––– रें मं गं रें – गं – रें – गं – नि –– सां, सां <u>नि</u> ध प, ध म ग रे, प म ग रे, म ग रे ग नि़ –– सा।

अभ्याास प्रश्न

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. राग भूपाली का वादी स्वर क्या है?
2. राग देश गायन समय क्या है?

ब) घु उत्तरीय प्रश्न :

1. राग राग भूपाली का परिचय दीजिए।
2. पाठ्यक्रम के किसी एक राग पूर्ण परिचय लिखिए।

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई के पूर्ण अध्ययन के बाद आप राग के स्वरूप को क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत कर पाएँगे। राग स्वरूप, राग के पकड़ स्वर, वादी–सम्वादी स्वर, स्वरों का अल्पत्व–बहुत्व प्रयोग, न्यास के स्वर आदि से स्थापित होता है, जिन सब के बारे में पाठ्यक्रम के प्रत्येक राग के सन्दर्भ में बताया गया है। इससे आप राग की सुन्दर प्रस्तुति कर सकेंगे।

2.5 शब्दावली

- वादी स्वर– राग के मुख्य स्वर जिसका प्रयोग राग में बार–बार किया जाता है।
- सम्वादी स्वर– इसका प्रया`ग राग में वादी स्वर के साथ सम्वाद के रूप में किया जाता है
- अनुवादी स्वर– इसका प्रयोग राग में वादी, सम्वादी के बाद प्रया`ग किया जाता है।
- विवादी स्वर– इस स्वर का प्रयोग राग में बहुत खूबसेरती के साथ किया जाता है। वैसे विवादी स्वर का शाब्दिक अर्थ बिगाड़ पैदा करने वाला होता है, पर गुणजन इसका प्रयोग कहीं–कहीं खूबसूरती के लिए करते हैं।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. एक शब्द में उत्तर दीजिएः–

.1.	विलम्बित ख्याल	2.	16 मात्रा व 4 विभाग
3.	रिषभ	4	औडव–औडव

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. ग
2. रात्रि का दूसरा प्रहर

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. 1. गर्ग, प्रभुलाल(बसन्त), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव हरीशचन्द्र, राग परिचय भाग–2, 3।
3. द्विवेदी, रामाकान्त, संगीत स्वरित।
4. भातखण्डे, विष्णु नारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग – 3, 4।

2.8 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

3 संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4 झा, रामाश्रय, अभिनव गीतान्जली।
5 परांजपे, डॉ0 शरदचन्द्र श्रीधर, संगीत बोध।

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के रागों का पूर्ण परिचय दीजिए।

इकाई 3 – नाट्यशास्त्र एवं संगीत रत्नाकर ग्रन्थों का संक्षिप्त अध्ययन

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 'नाट्यशास्त्र' ग्रन्थ का अध्ययन
3.4 'संगीत रत्नाकर ' ग्रन्थ का अध्ययन
3.5 सारांश
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 शब्दावली
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम, माइनर वोकेशनल कोर्स (बी0ए0एम0एम0(एन)–221) के चतुर्थ सेमेस्टर की तीसरी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप रागों का परिचय तथा रागों के मुख्य स्वर समुदाय जान चुके होंगे।

इस इकाई में भरत का 'नाट्यशास्त्र', पं० शारङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर', ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्राचीन संगीत पर दृष्टि डालने वाले इन ग्रन्थों के महत्व को समझा सकेंगे तथा इनमें जो प्राचीन विद्वान संगीत चिन्तकों के विचारों का सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः–

- बता सकेंगे कि प्राचीन समय में संगीत का क्या अस्तित्व था।
- समझा सकेंगे कि संगीत के अन्तर्गत स्वर, राग, गायन शैलियों का स्वरूप किस प्रकार शनै–शनै विकसित हुआ है।
- गायन, वादन एवं नृत्य के विषय में प्राचीन संगीत मनीषियों के ज्ञान एवं विचारों का विश्लेषण कर सकेंगे।

- समझा सकेंगे कि ग्रन्थों के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य में संगीत के विकास की कड़ियाँ स्पष्ट रूप से पाई जाती है।
- नाट्यशास्त्र एंव संगीत रत्नाकर के मुख्य बिन्दुओं को प्रस्तुत कर सकेंगे
- नाट्यशास्त्र एंव संगीत रत्नाकर के मुख्य बिंदुओं का वर्णन कर सकेंगे
- संगीत रत्नाकर सात अध्यायों के नामों का उल्लेख कर सकेंगे

3.3 नाट्यशास्त्र ग्रन्थ का अध्ययन

पाँचवीं शताब्दी में भरत ने नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ लिखा। भरत के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग यह काल चौथी तथा पॉचवी शताब्दी का मानते तथा कुछ तीसरी शताब्दी का, परन्तु भरत का काल पॉचवी शताब्दी ही सर्वमान्य है। भरत के इस ग्रन्थ में संगीत के श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना आदि विषयों की व्याख्या की गई है। भरत ने, नाट्यशास्त्र गायन का विषय लेकर नहीं लिखा था। उन्होंने तो उसे नाट्य कला को समझने के लिए लिखा था। परन्तु गायन को उन्होंने नाट्य का एक अंग समझ कर ही संगीत की चर्चा की हैं। भरत ने नाट्यशास्त्र में 28 से 33 तक के अध्यायों में संगीत सम्बन्धी वर्णन किया है।

संगीत सम्बन्धी प्राप्त होने वाले ग्रन्थों में भरत का नाट्यशास्त्र मुख्य तथा आधारभूत ग्रन्थ है। यद्यपि राग शब्द पारिभाषित संज्ञा के रूप में नाट्यशास्त्र में अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में पाया जाता है, परन्तु यह राग–प्रणाली के तत्कालीन अस्तित्व को प्रमाणित करता है इसमें कोई सन्देह नहीं। भरत के परवर्ती विद्वान कोहल, कश्यप, याष्टिक, दुर्गा शक्ति आदि संगीतज्ञों के द्वारा जाति की राग–प्रणाली का विवेचन अधिक विस्तापूर्वक किया गया है, इससे प्रतीत होता है कि काल तक प्राचीन जातियों का स्थान राग–प्रणाली ग्रहण कर चुकी थी।

राग शब्द का प्रयोग नाट्यशास्त्र में रंजकता के अर्थ में निम्न रीति से हुआ है–

'यथा वर्णादृते चित्रं न शोभोत्पादनं भवेत्।

एवमेव बिना गानं नाट्यं रागं न गच्छति।।'

भारतीय संगीत के शास्त्रीय विवेचन के आज जो भी ग्रन्थ उपलब्ध है उन सभी में भरत के 'नाट्यशास्त्र' का नाम सर्वप्रथम आता है और वही आज के सभी संगीत ग्रन्थों का आधार रहा है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार भरत का नाट्यशास्त्र नाट्यवेद के नाम से सम्मानित रहा है। नाट्यशास्त्र के अनुसार वह चार वेदों के अतिरिक्त पंचम तथा सार्ववर्णिक वेद है। भरत का नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य तथा संगीत का वृहद् कोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन एवं प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है। वस्तुतः संगीत शब्द की व्याप्ति भरत काल में गीत तक सीमित रही है – गीत, वाद्य तथा नृत्य इस त्रयी का बोध उसमें कथमपि नहीं होता, यह तथ्य ध्यान देने योग्य है। भरतोक्य नाट्य में केवल नाट्यांग के रूप में इन तीनों का प्रयोग निहित है, न कि स्वतंत्र रूप में। इनका उद्देश्य केवल नाट्य की रंजकता को बढ़ाना था। नाट्य में गान्धर्व अथवा संगीत का प्रयोग उतना ही अभीष्ट है, जो उसकी रस–सिद्धि में सहायक हो और इसी हद तक भरत ने उसका उपयोग स्वीकृत किया है।

<u>स्वर एवं श्रुति</u> – भरत के नाट्यशास्त्र तथा तीनों कालों (प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक) के ग्रन्थकारों ने स्वर एवं श्रुति का विभाजन नीचे लिखे सिद्धान्त के आधार पर किया है :–

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।

द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतौ।।

अर्थात षड़ज, मध्यम तथा पंचम स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ, निषाद तथा गन्धार में दो–दो श्रुतियाँ, ऋषभ तथा धैवत स्वरों में तीन–तीन श्रुतियाँ हैं। भरत के साथ–साथ यह सिद्धान्त तीनों कालों के ग्रन्थकार मानते हैं। परन्तु तीनों कालों के ग्रन्थकार अपने शुद्व तथा विकृत स्वरों की स्थापना 22 श्रुतियों पर अलग–अलग ढंग से करते हैं। भरत ने शुद्व स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर की हैं। कहने का अर्थ यह है कि यदि स में चार श्रुतियाँ है तो स की स्थापना इन चार श्रुतियों की अन्तिम श्रुति यानि चौथी श्रुति पर की है। इस प्रकार उनके सात शुद्ध स्वर नीचे लिखी श्रुतियों पर स्थापित थे। स चौथी श्रुति पर, रे सातवीं श्रुति पर, ग नवीं श्रुति पर, म तेरहवीं श्रुति पर, प सत्रहवीं श्रुति पर, ध बीसवीं श्रुति पर तथा नि बाईसवीं श्रुति पर। भरत ने सात स्वरों के अतिरिक्त अन्तर गन्धार और काकली निषाद इन दो विकृत स्वरों का उल्लेख भी अपनी पुस्तक में भी किया है। इससे पता चलता है कि भरत के समय में शुद्ध एवं विकृत कुल मिलाकर 9 स्वर प्रचार में थे।

श्रुति का नाम	भरत के स्वर
1. तीव्रा	
2. कुमुद्वती	काकली निषाद
3. मंदा	
4. छन्दोवती	सा
5. दयावती	
6. रंजनी	
7. रतिका	रे
8. रौद्री	
9. क्रोधा	ग
10. वज्रिका	
11. प्रसारिणी	अन्तर गन्धार
12. प्रीति	

13. मार्जनी	म
14. क्षिति	
15. रक्ता	
16. संदीपनी	प
17. आलापिनी	
18. मदन्ती	
19. रोहिणी	
20. रम्या	ध
21. उग्रा	
22. क्षोभिणी	नि

श्रुतियाँ समान–असमान और सारणा चतुष्टयीः श्रुतियों के माप के विषय में प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थों में कुछ नहीं कहा गया है। भरत व शारंगदेव ने श्रुति विवेचन बहुत ही संक्षिप्त किया है। उनके द्वारा किये गये वर्णन को लेकर वर्तमान के विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में श्रुति चर्चा करते हुए सारणा चतुष्टयीः में एक प्रयोग लिखा है जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे। इस प्रयोग में प्रमाण श्रुति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। संक्षेप में भरत की सारणाओं के विषय में निम्न वर्णन है।

सर्वप्रथम भरत ने बताया कि दो वीणाएँ ऐसी लें जिनका आकार, नाद, दण्ड आदि समान हो। सर्वप्रथम दोनों वीणाओं को षड्ज–ग्राम में मिला लें। इनमें से एक का नाम ध्रुव–वीणा है और दूसरी का चल–वीणा। दोनों वीणाओं में सात–सात तार हैं। प्रथम तार को कहीं भी मिला लें जो षड्ज होगा। चौथा तार षड्ज–मध्यम संवाद के आधार पर मध्यम में मिला हें।

चल वीणा के पंचम को उतार कर मध्यम–ग्राम की बना लें अर्थात् चल वीणा, जिस पर सारणा करनी है उस के पंचम को एक श्रुति उतार लें जिससे यह मध्यम ग्राम की हो जाए।

जिससे उसका पंचम, ऋषभ से संवाद करने लगे, तत्पश्चात पंचम को बिना उतारे शेष स्वरों को उतार कर वीणा को पुनः षड्ज–ग्राम की बना लें। अब दोनों वीणाओं में एक श्रुति का अन्तर हो गया है।

दूसरी सारणा के लिए कहा गया है कि 'पुनरपि तद्वदेवापकर्षेत', यह अंश समान श्रुति कहने वालों का आधार है। इस का अर्थ है कि चल–वीणा को फिर से वैसे ही उतार लें लेकिन इसके बाद के अंश के अनुसार– 'यथा गांधारनिषादवनतावितरस्यामृषभधैवतौ प्रवेक्ष्यतः द्विश्रुत्यधिकत्वात्'। यह अंश असमान वादियों का आधार है। इसका अर्थ है कि चल–वीणा के गांधार व निषाद दो श्रुति अधिक होने के कारण ध्रुव–वीणा के ऋषभ व धैवत में मिल जाएँगे।

इसी प्रकार तीसरी सारणा में पुनः कहा गया है कि फिर से वैसे ही उतार लें, जिससे चल वीणा के तीन श्रुति के 'ऋषभ' और 'धैवत' ध्रुव वीणा के 'षड्ज' और 'पंचम' में क्रमशः मिल जाएँगें।

चतुर्थ सारणा में पुनः वैसे ही करें जिससे चल–वीणा के चार श्रुति वाले स्वर पंचम, मध्यम और तार–षड्ज ध्रुव–वीणा के क्रमशः मध्यम, गांधार और निषाद में मिल जाएँगे।

भरतमुनि द्वारा किए गये श्रुति सम्बन्धी संक्षिप्त विधान ने वर्तमान के विद्वानों को दो वर्गों में विभक्त कर दिया है। चारों सारणाओं के प्रथम भाग पर बल देने वालों का मत है कि भरत व शारंगदेव की श्रुतियाँ समान थी। क्योंकि चारों बार समान रूप से कहा गया है कि ठीक वैसी ही प्रक्रिया करनी है अतः परिणाम चारों बार समान ही होना चाहिए, अलग–अलग नहीं। इस मत का अनुसरण करने वालों में मुख्य रूप से पं0 भातखण्डे और उनकी परम्परा के विद्वान आते हैं।

सारणा चतुष्टयीः के प्रयोग से यह विदित होता है कि भरत अपनी श्रुतियों को समान मानते थे। क्योंकि यदि वे अपनी श्रुतियों को असमान मानते तो इस प्रकार प्रत्येक सारणा में एक–एक श्रुति का अन्तर नहीं करते। उनकी श्रुति एक नाप बन गयी थी जिसके द्वारा वे स्वरों को स्थापित किया करते थे। उदाहरण के लिए यदि उनके सा, म, प, स्वरों में चार–चार श्रुतियाँ कम कर दे तो नि, ग और म स्वर बन जाते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उनकी 22 श्रुतियाँ समान थी। भरत की तरह प्राचीन सभी ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे।

ग्राम – सात स्वरों के सप्तक को 22 श्रुतियों को भिन्न–भिन्न प्रकार से स्थापित करने को ग्राम कहते हैं। चतुश्चतुश्चतुश्चैव के सिद्धान्त से 22 श्रुतियों की स्थापना करें तो एक ग्राम बन जाता है। यदि अब यही स्वर किसी अन्य स्वर से 22 श्रुतियों पर स्थापित किये जाये तो एक नया ग्राम बनता है। भरत ने तीन ग्राम माने हैं। **1. षड्ज ग्राम, 2. मध्यम ग्राम तथा 3. गान्धार ग्राम**

1. षड्ज ग्राम – यदि सप्तक के सात स्वर 22 श्रुतियों पर इस प्रकार स्थापित किये जाये कि सा चौथी पर, रे सातवीं पर, ग नवीं पर, म तेरहवीं पर, प सत्रहवी पर, ध बीसवीं पर तथा नि बाईसवीं पर हो तो षड्ज ग्राम बनता है। परन्तु इस क्रम के अतिरिक्त यदि कोई स्वर अपनी श्रुति बदल देता है तो वह फिर षड्ज ग्राम नहीं रहेगा। आधुनिक समय में यही ग्राम प्रचार में हैं।

2. मध्यम ग्राम – षड्ज ग्राम के स्वरों में से यदि केवल पंचम स्वर की एक श्रुति कम पर स्थापित किया जाये तो मध्यम ग्राम बनता है। कहने का अर्थ यह है कि यदि षड्ज ग्राम का पंचम स्वर जो सत्रहवीं श्रुति पर है, सोलहवीं श्रुति पर किया जाये तो मध्यम ग्राम बनता है।

3. गान्धार ग्राम – भरत ने बताया कि गान्धार ग्राम का लोप प्राचीनकाल में ही हो गया था। इसीलिए इस ग्राम की स्पष्ट व्याख्या शास्त्रों पर नहीं मिलती।

मूर्च्छना – भरत ने अपने ग्रन्थ में बताया कि ग्रामों से ही मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति होती थी। किसी एक ग्राम से सात स्वरों का बारी–बारी से प्रत्येक को षड्ज मानकर आरोह–अवरोह करने से विभिन्न मूर्च्छनाऐं बनती

थी। उदाहरण के लिए षड्ज ग्राम के प्रत्येक स्वर को एक–एक कर षड्ज माना जाए और उसका आरोह–अवरोह किया जाए अर्थात पहली मूर्च्छना षड्ज ग्राम से प्रारम्भ होकर आरोह–अवरोह करने पर षड्ज ग्राम के स्वरों की तरह होगी। हमें यहाँ ध्यान रखना है कि प्राचीनकाल के ग्रन्थकार अपने स्वरों को अन्तिम श्रुतियों पर स्थापित करते थे। इससे षड्ज ग्राम के सात स्वर आधुनिक काफी थाट के समान होते हैं। दूसरी मूर्च्छना मन्द्र निषाद को षड्ज मानकर आरोह–अवरोह करने पर बनेगी। तीसरी मूर्च्छना मन्द्र धैवत को षड्ज स्वर मानकर आरोह–अवरोह करने से बनती हैं। इसी प्रकार क्रमशः मन्द्र, पंचम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ स्वरों को षड्ज मानकर आरोह–अवरोह करने पर अन्य मूर्च्छनाएँ बनेगी।

<u>जातियाँ</u> – प्राचीनकाल में राग नाम की कोई वस्तु नहीं थी। रागों के स्थान पर उस समय जातियाँ गाई जाती थी। ये जातियाँ मूर्च्छनाओं से ही उत्पन्न होती थी।

नाट्यशास्त्र में वर्णित शुद्धगत, भिन्नराग, गौड़राग, कैशिकराग, साधारण, भाषाराग, विभाषाराग, इन सात गीतियों के राग, दृष्टफल की सिद्धि एवं भाव और रस का उपरज्जन करते हैं। आचार्य अभिवन गुप्त की 'नाट्यशास्त्र कृत टीका' के अनुसार वे जातियाँ हैं।

ऐसी सात षड्जग्रामाश्रित जातियों का वर्णन नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय यानि स्वराध्याय में मिलता है–

1. षाड्जी
2. आर्षभी
3. धैवती
4. निषादिनी
5. षड्जकैशिकी
6. षड्जमध्या
7. षडजोदीच्यवती

ऐसी 11 मध्यमग्रामीय जातियों का विवरण हमें नाट्यशास्त्र में मिलता है :–

1. गाधांरी
2. मध्यमा
3. गान्धारोदीच्यवा
4. पंचमी
5. रक्तगांधारी
6. गान्धारपंचमी
7. मध्यमोदीच्यवा
8. नन्दयन्ती
9. कार्मारवी
10. आन्ध्री
11. कैशिकी

भरत ने जाति के 10 लक्षण भी बताए हैं जो इस प्रकार है – **ग्रह, अंश, मन्द्र, तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव, औडव।** कालान्तर में जाति लक्षण, राग लक्षण के नाम से जाने जाने लगे हैं, क्योंकि जाति का स्थान राग ने ले लिया है। आजकल इन्हें 'प्राचीन राग लक्षण' के नाम से भी जाना जाता है।

भरत के अनुसार जातियाँ एवं जातिगान सामगान से उद्भूत हुई हैं। इस सम्बन्ध में भरत का कथन है–

'अस्य योनिर्भवेद्गानं वीणा वंशस्तथैव च।

एतेषां चैव वक्ष्यामि विधिं स्वरसमुत्थितम्।।'

जाति की परिभाषा को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि सामगान के अन्तर्गत जो स्वरावलियाँ प्रचलित थीं, उन्हीं के आधार पर जातियों का निर्माण हुआ। जातियों को व्यवस्थित रूप देने के लिए ग्रामों में स्वरो को श्रुतिबद्ध किया गया तथा षड्जग्राम को आधार सप्तक मान कर जाति–गायन का विकास हुआ।

राग के कई अर्थ हैं, इसका प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में तथा कालिदास ने अपने काव्य में किया है। संगीत के सन्दर्भ में 'राग' शब्द रंजकता से जुड़ा हुआ है तथा इस ग्रन्थ में भी संगीत के राग तथा रंजकता के अर्थ में ही इसका प्रयोग हुआ है।

आज भी नाट्यशास्त्र प्राचीन कला का एक आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है वास्तव में भरतमुनि के पूर्व शताब्दियों में भारतीय संगीत की स्थिति बड़ी उच्चकोटि की रही, जैसा कि ऐतिहासिक गवेषणाओं से मालूम पड़ता है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र को लिखकर संगीत की महान सेवा की है, क्योंकि भरत से पूर्व हमें कोई प्रामाणिक ग्रन्थ संगीत पर नहीं मिलता। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने से इस युग में विधान पूर्ण संगीत की अभिवृद्धि हुई है। नाट्य के अन्तर्गत 'ध्रुवा' नामक गीतों का विशिष्ट स्थान है।

<u>गीतिगान</u> – भारतीय संगीत के शास्त्रीय का उल्लेख मिलता है। भरत के अनुसार गीतियों का अन्तर्भाव गान्धर्व के अन्तर्गत हैं।

भरत के अनुसार ये गीतियाँ नाट्य के अतिरिक्त गान्धर्व में भी गायी जाती रही हैं। संगीतरत्नाकरकार के अनुसार वर्ण, पद तथा लय में समन्वित गानक्रिया गीति कहलाती है–

वर्णाद्यलंकृता गानक्रिया पदलयान्विता।

गीतिरित्युच्यते सा च बुधैरूक्ता चतुर्विधा।।

गीतियाँ दो प्रकार की थीं– स्वराश्रिता तथा पदाश्रिता। पाँच स्वराश्रिता गीतियों पर आधारित पाँच प्रकार के ग्रामरागों की चर्चा की गई है।

अलंकारों का सम्बन्ध प्राचीन गीतियों से है। प्राचीन ग्रन्थकारों ने स्वर से वर्ण, वर्णो से अलंकार तथा अलंकारों का प्रयोग व उद्देश्य गीतियों को रंजकता व सौन्दर्य प्रदान करना माना है। गीति गाये जाने वाले

गीतों को कहते हैं जो छन्द, अक्षर, पद तथा ताल, लय युक्त हो। अलंकार के पश्चात भरत ने गीतियों का वर्णन किया है।

'अथ गीतिं प्रवक्ष्यामि छन्दोक्षरसमन्विता।'

भरत के अनुसार गीति अक्षरों से निर्मित तथा छन्दों से समन्वित गान है।

भरत ने नाट्यशास्त्र में पदाश्रित गीतियों का ही उल्लेख किया है। यद्यपि गीतियां दो प्रकार की मानी गई हैं– पदाश्रिता तथा स्वराश्रिता।

भरत ने पदाश्रिता गीतियों का उल्लेख किया है तथा यह भी कहा है कि इन्हें ध्रुवागीत के बिना भी गाया जाता है। इन गीतियों में ताल, पद रचना, लय, पद की आवृत्ति, यति, ग्रह आदि का बंधन दिखाई पड़ता है जो ध्रुवगीतियों के उद्देश्य तथा प्रयोजन के विरूद्ध प्रतीत होता है। इन गीतियों को चंचतपुट ताल में ही गाने की व्यवस्था भी दीख पड़ती है। भरत ने स्वराश्रिता गीतियों(जिसे मतंग तथा अन्य परवर्ती ग्रन्थकारों ने रागों का आधार माना है) का उल्लेख नहीं किया है। स्वराश्रिता गीतियाँ मूलतः पाँच है।

<u>वाद्य</u> – नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय यानि स्वराध्याय में चार प्रकार के वाद्यों का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार हैः

ततं चैवावद्धं च घन सुषिरमेव च।

चतुर्विधं तु विज्ञयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।

भावार्थः लक्षणों से युक्त वाद्य चार प्रकार के जानना चाहिये – तत् और अवनद्ध, घन और सुषिर।

'तत्' का अर्थ है 'वीणा' इत्यादि तंत्री वाद्य, सुषिर का अर्थ है वंशी इत्यादि फूंक से बजाए जाने वाले वाद्य, अवनद्ध का अर्थ है खाल से मढ़े हुए और बद्धियों से कसे हुए मृदंग इत्यादि वाद्य और घन का अर्थ है 'झांझ' या मंजीरा यानि दो धातु द्वारा परस्पर टकराकर बजाए जाने वाले वाद्य।

नाट्यशास्त्र में शरीर से उत्पन्न होने वाले स्वर और वीणा से उत्पन्न होने वाले स्वर बताए हैं, क्योंकि स्वरों के उत्पत्ति स्थान दो होते हैं, वीणा और शरीर।

जिस पर तंत्रियां फैली हो वे 'तत् वाद्य' कहलाते हैं, सुषिर– छिद्र से युक्त होने के कारण 'वंशी' 'शहनाई' जैसे वाद्य सुषिर कहलाए। चमड़े की बद्धियों से बंधे होने के कारण 'मृदंग जैसे वाद्य अवनद्ध कहलाए, इनको ही 'पौष्कर' भी कहा गया क्योंकि पुष्करिणी (कमल युक्त सरोवर) में खिले हुए कमलों की पंखुड़ियों पर पड़ने वाली वर्षा की बूंदों से उत्पन्न मधुर ध्वनियों का अनुकरण करने के लिये स्वाति नामक मुनि ने इनका निर्माण किया।

तत् वाद्यों की श्रेणी में मत्तकोकिला वीणा को प्रधान वीणा माना गया है तथा विपंची को सहायक वीणा माना गया है। वीणा में प्रमुख मत्तकोकिला वीणा मानी गई है, जिसमें मन्द्र, मध्य और तार स्थान में सात–सात स्वरों की अभिव्यक्ति के लिये इक्कीस तंत्रियां होती हैं। नौ तंत्रियों वाली वीणा विपंची अंगमात्र है

और विपंची वादक का कार्य तत्वृन्द में मत्तकोकिला वीणा वादक की सहायता करना है। वांशिक भी वैणिक का सहायक मात्र है। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग वादक प्रमुख माना गया है और अन्य वाद्यों के वादक उसके सहायक है। हुडुक्क के आकार का एक वाद्य विशेष 'पणव' है जिसके अन्दर तार लगे होते हैं। 'महाघट' के आकार का एक वाद्य विशेष 'दुर्दर' कहलाता है। झांझ, मंजीरा इत्यादि वाद्यों को भी 'अवनद्ध कुतप' के अन्तर्गत समझना चाहिये। भरतकालीन वाद्यवृन्द के लिये 'कुतप' संज्ञा दी गई है। नाट्यशास्त्र में तीन प्रकार के कुतप का वर्णन मिलता है।

1. तत् कुतप – तत कुतप का अर्थ नाटक की कथा से असम्बद्ध, तत् वाद्यों का प्रयोग और उनके साथ मानव कंठ का स्वतंत्र (सूत्रधार की अपनी इच्छा के अनुसार) प्रयोग है। इस प्रकार तत्वृन्द तंत्री प्रधान या स्वर प्रधान कहलाया जायगा।
2. अवनद्ध कुतप – इसी प्रकार अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग अवनद्ध कुतप है।
3. नाट्य कुतप – तत् और अवनद्ध वाद्यों का अभिनय पोषण और नाटक पात्र का वर्गगत प्रयोग, नाट्यकृत प्रयोग या नाट्य कुतप कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न

क) सही गलत बताओं :–

1. भरत ने जाति के बारह लक्षण बताए हैं।
2. भरत ने जाति गान को सामगान से उद्भूत बताया है।
3. भरत ने स्वराश्रिता गीति का उल्लेख किया है।

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति :–

1. भरतकालीन वाद्यवृन्द के लिए .... संज्ञा दी गई है।
2. नाट्यशास्त्र का स्वराध्याय .... वां अध्याय है।

3.4 संगीत रत्नाकर का अध्ययन

१३वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पं० शारङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा था। वह देवगिरि (दौलताबाद) राज्य का दरबारी संगीतज्ञ था। यह ग्रंथ उत्तरी और दक्षिणी दोनों संगीत–पद्धतियों में आधार ग्रंथ माना जाता है। संगीत रत्नाकर सात अध्यायों में विभाजित है जिनमें गायन, वादन और नृत्य तीनों से संबंधित पारिभाषिक शब्दों तथा अन्य बातों पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि उसने भरत का अनुसरण किया है फिर भी उसकी मौलिकता और प्रतिभा सारणा चतुष्टई, मूर्छना, मध्यम ग्राम का लोप, अनेक विकृत स्वरों की प्राप्ति में झलकता है।

इस संस्कृत ग्रन्थ में सात अध्याय है। अतः इसे कदाचित् 'सप्ताध्यायी' नाम से भी जाना जाता है। सात

अध्याय इस प्रकार हैं:

1. स्वरगताध्याय 5. तालाध्याय

2. रागविवेकाध्याय 6. वाद्याध्याय

3. प्रकीर्णकाध्याय 7. नर्तनाध्याय

4. प्रबन्धध्याय

संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय– स्वराध्याय में नाद की परिभाषा, नाद की उत्पत्ति और उसके भेद (आहत और अनाहत), सारणा चतुष्टई, ग्राम, मूर्छना, वर्ण, अलंकार और जाति का विस्तृत वर्णन मिलता है। सारणा चतुष्टई प्रयोग के अंतर्गत भरत ने स्वर वीणा और शारङ्गदेव ने श्रुति वीणा पर प्रयोग किया है। इसलिये भरत ने सात तार और पंडित शारङ्गदेव ने २१ तार बांधे थे। मूर्छना के अन्तर्गत उसने सभी मूर्छनाओं को षडज ग्राम में खिसका दिया और प्रत्येक मूर्छना को षडज ग्राम से प्रारम्भ किया जिससे उसे विकृत स्वरों की परख हुई। उसके समय तक केवल दो ही विकृत स्वर माने जाते थे। उसके स्वरों की विशेषता यह थी कि कोई भी स्वर अपने स्थान से हट जाने पर विकृत तो होता ही था. अपने स्थान पर रहते हुये भी पिछले स्वर से अन्तराल (श्रुत्यांतर) बदल जाने पर भी विकृत हो जाता था।

संगीत रत्नाकर का दूसरा अध्याय राग विवेकाध्याय, है। इसके अंतर्गत उसने २६४ रागों का वर्णन किया है। उसने सभी रागों को १० भागों में बांटा है। उनके नाम हैं– (१) ग्राम राग जिनकी संख्या ३० मानी है, (२) राग की २० (३) उपराग की ८, (४) रागांग की भी ८, (५) भाषांग की २१, (६) क्रियांग की १२, (७) उपांग की ३, (८) भाषा की ९६ (६) विभाषा की २० और (१०) अंतर्भाषा रागों की संख्या ४ मानी है। इस वर्गीकरण का आधार अस्पष्ट होने के कारण इनके अर्थ के विषय में कई मतमतांतर हैं। फिर भी इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट है कि उस समय भरत की जातियां अप्रचलित हो गई थीं।

तीसरा अध्याय प्रकीर्णकाध्याय है, जिसमें उसने वाग्गेयकार के २८ गुणों का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त उसमें गायक के गुण–दोष तथा अच्छाई–बुराई बताई है। जिसमें 'प्रकीर्ण' अर्थात् विविध विषय निहित हैं। इसका आरम्भ निपुण रचयिता 'वाग्गेयकार' के वर्णन से होता है। वह जो रचना के साहित्यिक पक्ष के साथ–साथ सांगीतिक रूप का भी रचयिता को, 'वाग्गेयकार' कहलाता है। वाग्गेयकार लक्षणों के अंतर्गत व्याकरण का ज्ञान, सामान्य भाषा ज्ञान, रस, भाग, कला, लय, ताल, देशी राग, प्रंबन्ध इत्यादि का

ज्ञान सम्मिलित हैं। रचयिता के स्तर के अनुसार उत्तम, मध्यम एवं अधम श्रेणियां भी दी गई हैं। तत्पश्चात् गंधर्व एवं स्वरादि का वर्णन है। वह जिसे मार्ग एवं देशी संगीत का ज्ञान हो, 'गंधर्व' है तथा वह जिसे केवल मार्ग का ज्ञान हो, 'स्वरादि' है।

विभिन्न श्रेणियों के आधर पर गायक के लक्षण दिए गए हैं। उदाहरण के रूप में, उत्तम गायक की आवाज का गुण ध्र्म अच्छा होना चाहिए, उसे रागों, रागांगों भाषाओं, क्रियांगो और उपांगो से भली प्रकार परिचित होना चाहिए, प्रबंधों, आलप्ति का ज्ञान होना चाहिए, सभी स्थानों में गमक का अभ्यास, ताल, लय इत्यादि का ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार मध्यम, अधम, पंचविध गायक, त्रिविध गायक तथा गायन्ति (गायिका) का भी वर्णन है।

इस अध्याय में पं. शारङ्गदेव के द्वारा पंद्रह प्रकार के गमक तथा छियानवे स्थाय बताए गए हैं। आवाज का इस प्रकार हिलाना जिससे चित्त प्रसन्न हो, 'गमक' कहलाता है तथा 'स्थाय' राग के अवयव हैं। राग को अनावृत्त करने की प्रक्रिया 'आलप्ति' कहलाती है। वे आलप्ति के दो प्रकार बताते हैं। 1. रागालप्ति तथा 2. रूपक आलप्ति। अन्त में, वे वृन्द गान एवं वादन का उल्लेख करते हैं।

चौथा अध्याय, प्रबन्धाध्याय है जिसमें पं० शारङ्गदेव ने प्रबंध विषय पर विचार किया है। देशी संगीत, मार्गी संगीत, निबद्धगान, अनिबद्धगान, रागालाप, रूपकालाप, आलप्तिगान, स्वस्थान नियम का आलाप, अल्पत्व–बहुत्व आदि पर इस अध्याय में प्रकाश डाला है। प्रबन्ध प्राचीन काल की एक प्रचलित गेय विधा थी जिसमें चार धातु– उद्ग्राह ,मेलापक, ध्रुव, आभोग एवं छः अंग–स्वर, बिरुद, तेनक, पद, पाट तथा ताल का समावेश था। प्रबन्ध के तीन प्रकार – सूड, आलि अथवा आलिक्रम एवं विप्रकीर्ण बताये गए हैं।

पं. शारङ्गदेव गीत की परिभाषा एवं उसके दो प्रकार – गंधर्व एवं गान से आरम्भ करते हैं। गान के दो प्रकार हैं– निबद्ध तथा अनिबद्ध। वह जो धतुओं और अंगों से बद्ध हो वह 'निबद्ध' है तथा वह जो इस प्रकार के बन्धन से मुक्त हो, 'अनिबद्ध' है। निबद्ध के लिए वे तीन संज्ञाएं बताते हैं– प्रबन्ध, वस्तु तथा रूपक।

पाँचवा अध्याय अर्थात् तालाध्याय 'ताल' की अवधरणा पर केन्द्रित है। पं. शारङ्गदेव के अनुसार, ताल वह आधार है जिस पर गायन, वादन तथा नृत्य प्रस्थापित हैं। इस अध्याय के दो भाग हैं। प्रथम भाग के अंतर्गत मार्ग ताल तथा द्वितीय भाग के अंतर्गत देशी ताल बताये गए हैं। मार्ग तालों के पाँच प्रकार तथा देशी तालों के एक सौ बीस प्रकार दिए गए हैं।

ताल के विभिन्न अवयव, जैसे क्रिया (निःशब्द एवं सशब्द), लय, यति, कला इत्यादि का वर्णन उनके सांगीतिक काल अथवा गति के क्रियात्मक प्रस्तुतिकरण के आधार पर किया गया है।

'वाद्याध्याय' नामक छठे अध्याय के अंतर्गत चार प्रकार के वाद्य दिए गए हैं, यथा– 1. तत, 2. अवनद्ध 3. घन 4. सुषिर।

तत वाद्यों के अंतर्गत एक तंत्री, त्रितंत्री, चित्रा वीणा, विपंची वीणा, किन्नरी वीणा, पिनाकी वीणा इत्यादि जैसे तंत्री वाद्य सम्मिलित हैं। चमड़े से आच्छादित ताल वाद्य अवनद्ध कहलाते हैं। उदाहरण के रूप में पटह, घट, डक्क, डमरू, मेरी तथा दुंदुभि। धातु से निर्मित ताल वाद्य धन वाद्य कहलाते हैं। इस श्रेणी के

अंतर्गत जय घंटा, घंटा, क्षुद्र घंटिका इत्यादि जैसे वाद्य सम्मिलित हैं। वस्तुतः छिद्र युक्त वायु की सहायता से बजने वाले वाद्य सुषिर वाद्य कहलाते हैं, जैसे वंशी, पाविका, मुरली, श्रृंग, शंख इत्यादि।

इस अध्याय में इन वाद्यों का वादन शैली सहित वर्णन है।

'नर्तनाध्याय' नामक सातवां अध्याय नर्तन से संबंध्ति अवयवों, उप अवयवों तथा शारीरिक भंगिमाओं का वर्णन है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में पं. शारङ्गदेव ने नर्तन के संदर्भ में तीन संज्ञायें दी हैं। नाट्य, नृत्य तथा नृत्त। नाट्य एवं नृत्य का प्रयोग पर्व के समय तथा नृत्त का प्रयोग राजाओं के अभिषेक के समय, विवाह, पुत्रा जन्म इत्यादि उत्सवों के समय बताया गया है। नाट्य वाचिक अभिनय, नृत्य आंगिक अभिनय तथा नृत्त लय–ताल के अनुसार आंगिक क्रिया एवं पाद संचालन के द्वारा भावाभिव्यक्ति पर आधारित है। संगीत के संदर्भ में 'नृत्य' का प्रयोग है। नृत्य एवं नृत्त के दो प्रकार वर्णित हैं, यथा–ताण्डव एवं लास्य। ताण्डव उद्धत प्रकार एवं लास्य सुकुमार प्रकार माना जाता है, जिन्हें क्रमशः शिव एवं पार्वती ने उत्पन्न किया है। द्वितीय भाग के अंतर्गत नव रस–श्रृंगार, हास्य, अखुत, रौद्र, वीर, करुण, भयानक, बीभत्स तथा शांत का वर्णन दर्शकों के संदर्भ में किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

अ– लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संगीत रत्नाकर किस शताब्दी में लिखा गया?
2. संगीत रत्नाकर के रचयिता कौन हैं?
3. संगीत रत्नाकर के अध्यायों के नाम क्या हैं?
4. 'सप्ताध्यायी' किसे कहते हैं

ब– दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :–

1. 'वाग्गेयकार' किसे कहते हैं?
2. संगीत रत्नाकार में कितने प्रकार के गमक बताए गए हैं?

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि संगीत सदा संस्कृति का संगी रहा है। संगीत के इतिहास को संस्कृति के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता है। भरत, मतंग, शारंगदेव, की कृतियाँ संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण रही हैं। भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' संगीत एवं नाट्य का विश्वकोष है। स्वर के सूक्ष्मतम रूप श्रुति की व्याख्या सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में पायी जाती है।

तेरहवीं शताब्दी में लिखे गये ग्रन्थ संगीत रत्नाकार को 'सप्ताध्यायी' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें सात अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में संगीत के विविध पहलू विस्तारपूर्वक बताये गये हैं। उदाहरण स्वरूप, 'रागविवेकाध्याय' नामक द्वितीय अध्याय में वे रागों के दशविध वर्गीकरण का विवरण देते हैं तथा कुल 264 रागों का विवरण 'पूर्व प्रसिद्ध' व 'अधुना प्रसिद्ध' कहकर रचनाओं एवं विस्तार के साथ दिया है।

पं. शाघ्र्गदेव ने संगीत के सिद्धान्तों को पुनः स्थापित किया एवं उन्हें व्यापक रूप से सामने रखा। आज भी मूल शब्दावली की परिभाषाओं को इस ग्रन्थ में से उद्धृत किया जाता है। संगीत शास्त्र सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी जो हमें प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होती है उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर आज भी पूरी सांगीतिक व्यवस्था टिकी हुई है।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तेरहवीं शताब्दी
2. पं. शारंगदेव
3. स्वरगताध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, नर्तनाध्याय
4. संगीत रत्नाकर

3.7 शब्दावली

1. **श्रुति** – कानों से सुनी जा सकने वाली सुक्ष्म ध्वनि।
2. **ग्राम मूर्च्छना** – निश्चित सप्तक के सात स्वर समूहों के भाग को ग्राम कहते है। सप्तक में क्रमानुसार पॉच, छः या सात स्वरों का विशेष क्रमयुक्त प्रयोग मूर्च्छना कहलाता है।
3. **गमक** – आन्दोलित बलयुक्त स्वर का प्रयोग।
4. **गन्धर्व एवं गान** – यह मार्गदेशी संगीत का प्राचीन स्वरूप है। प्रथम ईश्वर प्राप्ति तथा दूसरा जन–रंजन के लिए हैं।
5. **जाति गान** – ध्रुपद व प्रबन्ध गायन के पूर्व एक प्राचीन गान प्रकार।
6. **ग्रह एवं अंश स्वर** – संगीत रचना का सबसे प्रारम्भिक स्वर ग्रह स्वर है तथा इसके पश्चात महत्वपूर्ण स्वर अंश स्वर है।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, श्री शरच्चंद्र श्रीधर, *भारतीय संगीत का इतिहास*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969(वैदिक काल से गुप्त काल तक)।
2. वृहस्पति आचार्य, *मुसलमान और भारतीय संगीत*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1974।
3. शर्मा, डॉ0 स्वतंत्रा, *भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण*, टी0एन0, भार्गव एण्ड संस, कटरा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण– 1988।
4. साभार गूगल।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, *भारतीय संगीत का इतिहास*, संगीत मंदिर, खुर्जा, प्रथम संस्करण 1981।
2. श्रीवास्तव, श्री हरीश्चन्द्र, *राग परिचय भाग–3*, संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर, *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1980।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'नाटयशास्त्र' ग्रन्थ किसने लिखा? 'नाटयशास्त्र' भारतीय संगीत का आधारभूत ग्रन्थ है। स्पष्ट कीजिए।
2. संगीत रत्नाकर में उल्लेखित सातों अध्यायों का वर्णन कीजिए।

इकाई 4 – संगीत संबंधी विषयों पर निबन्ध लेखन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 निबन्ध की व्याख्या
4.4 निबन्ध के अवयव
4.4.1 भूमिका
4.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय की भूमिका
4.4.2 विषय वस्तु
4.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा
4.4.2.2 संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा
4.4.2.3 विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा
4.4.3 उपसंहार – संगीत शिक्षा विषय पर
4.5 सारांश
4.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम, माइनर वोकेशनल कोर्स (बी0ए0एम0एम0(एन)–221) के चतुर्थ सेमेस्टर की चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाई में आप भरत का 'नाट्यशास्त्र', पं० शारङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर', ग्रन्थों का अध्ययन आप कर चुके हैं।

इस इकाई में निबन्ध लेखन के विषय में आपको कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराया जाएगा। निबन्ध लिखते समय किन–किन बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है यह भी इस इकाई में वर्णित है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निबन्ध लेखन की विधि तथा निबन्ध लेखन के अवयवों से परिचित होंगे। आप किसी भी विषय पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- निबन्ध लेखन के अवयवों का सही प्रयोग कर सकेंगे।
- अपनी लेखन शैली का विकास कर सकेंगे।
- किसी भी विषय में आप व्यवस्थित रूप से निबन्ध प्रस्तुत कर सकेंगे।

4.3 निबन्ध की व्याख्या

निबन्ध के विषय में आपने पूर्व में काफी सुना है तथा प्राथमिक कक्षाओं से ही निबन्ध लेखन का अभ्यास कराया जाता है। प्रत्येक स्तर पर निबन्ध का स्तर भी पृथक होता है। निबन्ध किसी विषय विशेष की समग्र रूप में व्यवस्थित व्याख्या है। निबन्ध में विषय से सम्बन्धित समस्त पहलुओं पर विचार प्रस्तुत किए जाते हैं। अतः निबन्ध में विषय की व्याख्या का स्वरूप व्यापक हो जाता है। विषय से सम्बन्धित पूर्व की उपलब्ध जानकारी को निबन्ध में समाहित कर उसका विश्लेषण किया जाता है और लेखक समालोचना के लिए भी स्वतंत्र रहता है। निबन्ध के माध्यम से लेखक व्याप्त भ्रान्तियों को भी दूर करने की चेष्टा करता है। इसी सन्दर्भ में निबन्ध और लेख के अन्तर को भी समझने की आवश्यकता है।

लेख प्रायः समस्या को लेकर आरम्भ किया जाता है एवं समस्या का निराकरण ही किसी लेख का मूल उद्देश्य रहता है। विद्यालय स्तर पर आपको दृश्यों का आंखों देखा वर्णन निबन्ध के रूप में लेखन का अभ्यास करवाया गया है। परन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर निबन्ध, विषय से ही सम्बन्धित रहता है और उस विषय के बारे में आपको समस्त जानकारी और यदि आवश्यक हो तो गुण–दोष के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। लेख सामान्य विषय पर वक्तव्य रूप में रहता है। निबन्ध लेखन अभ्यास से ही आप लेख लिखने एवं शोध पत्र लिखने में भी सक्षम होते हैं। अतः निबन्ध लेखन के अभ्यास से आपकी लेखन क्षमता बढ़ती है और आप अपने विचारों को कलम के माध्यम से प्रस्तुत करने की तकनीक भी विकसित कर पाते हैं। इस इकाई में स्नातकोत्तर स्तर के विषयों के निबन्ध की लेखन विधि पर चर्चा की जाएगी।

4.4 निबन्ध के अवयव

किसी भी विषय पर निबन्ध को प्रायः निम्न भागों में बांटकर विषय की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

1. भूमिका 2. विषयवस्तु 3. उपसंहार

3.4.1 भूमिका – इसके अन्तर्गत विषय के बारे में जानकारी देते हुए व्याख्या के अन्तर्गत आने वाले सन्दर्भों के बारे में बताते हैं। भूमिका के माध्यम से निबन्ध का स्वरूप पता चल जाता है। व्याख्या किन–किन बिन्दुओं पर केन्द्रित होनी है इसका संक्षिप्त परिचय भी भूमिका के माध्यम से दिया जाता है। भूमिका में विषय प्रवेश प्रस्तुत किया जाता है अर्थात विषय क्या है एवं विषय पर निबन्ध के माध्यम से हम विषय के सन्दर्भ में क्या–क्या चर्चा करेंगे।

उदाहरण के रूप में संगीत शिक्षा विषय के माध्यम से आपको निबन्ध की लेखन शैली से परिचित कराएंगे।

3.4.1.1 संगीत शिक्षा विषय पर भूमिका – प्राचीन काल से ही संगीत का सन्दर्भ हमें सामवेद से प्राप्त होता है तथा वैदिक समय में ऋचाओं के गान की शिक्षा गुरूमुख से देने की परम्परा थी और इस परम्परा का निर्वाह काफी समय तक रहा। संगीत का वास्तविक स्वरूप क्रियात्मक है। अतः इसकी शिक्षा भी क्रियात्मक रूप में देने से ही संगीत का स्वरूप स्पष्ट हो पाता है। यद्यपि संगीत से सम्बन्धित अवयवों की व्याख्या समय–समय पर विभिन्न संगीत मनीषियों के द्वारा दी जाती रही है परन्तु संगीत को क्रियात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करने के लिए शिष्य को गुरूमुख से ही शिक्षा ग्रहण करना होती थी जिसके लिए गुरूकुल की व्यवस्था रहती थी। वर्तमान में संगीत शिक्षा का स्वरूप बदल चुका है जिसकी चर्चा आगे की जाएगी। संगीत को विषय के रूप में समझा जाने लगा है जिससे उसकी शिक्षा भी उसी के अनुरूप होने लगी है।

जबकि संगीत को कला के रूप में ही समझने की आवश्यकता है। वर्तमान में संगीत हेतु शिक्षा के विभिन्न माध्यमों का अध्ययन कर उनके गुण दोष पर इस निबन्ध के माध्यम से विचार किया जाएगा।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध की भूमिका उदाहरण स्वरूप आपके लिए प्रस्तुत की गई है जिससे आप किसी भी विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका लिखने में सक्षम हो पाएंगे।

4.4.2 विषयवस्तु – भूमिका के पश्चात निबन्ध के विषय की विषय वस्तु प्रस्तुत की जाती है जिसमें विषय से सम्बन्धित सभी सन्दर्भों को प्रस्तुत किया जाता है। किसी विषय पर विषयवस्तु किस प्रकार लिखी जाती है इसका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत विषयवस्तु से जान सकेंगे।

संगीत शिक्षा विषय की विषयवस्तु – पहले संगीत की शिक्षा गुरूमुख से ही प्राप्त की जाती थी। परन्तु बाद में संगीत शिक्षा के नए स्वरूप भी स्थापित हुए। संगीत शिक्षा स्वरूप निम्न प्रकार हैः–

1. गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा।
2. संगीत संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा।
3. विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा।

4.4.2.1 गुरूमुख द्वारा संगीत शिक्षा – संगीत की शिक्षा शिष्य द्वारा गुरू के पास रहकर ही प्राप्त की जाती थी। इस शिक्षा पद्धति में शिष्य को अनुशासित होकर शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की लगन, धैर्य आदि को परखकर शिष्य को स्वीकार किया जाता था। गुरू द्वारा शिष्य को स्वीकार करने के पश्चात शिष्यत्व की औपचारिक घोषणा 'गंडा रस्म' अदायगी के साथ होती थी। इसमें गुरू और शिष्य एक दूसरे को 'धागा' बाँधकर प्रतिबद्धता का संकल्प लेते थे। इस प्रकार की शिक्षा में कोई निश्चित पाठ्यक्रम नहीं होता था और न ही संगीत शिक्षा की समयावधि निश्चित होती थी। गुरू द्वारा शिष्य की क्षमता के आधार पर ही शिक्षा दी जाती थी। एक ही गुरू के कई शिष्य होते थे। परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि सबको एक ही शिक्षा दी जाए। दी हुई संगीत शिक्षा का अभ्यास भी गुरू के निर्देशन में ही होता था। संगीत शिक्षा के अतिरिक्त संगीत सुनने का मार्ग निर्देशन का उद्देश्य यह था कि शिष्य अपना विवेक एवं धैर्य न खो बैठे। इस प्रकार की शिक्षा में धैर्य का बहुत महत्व था और लगन से गुरू द्वारा दिए गए अभ्यास के नियमों से कठिन अभ्यास करने की आवश्यकता होती थी। गुरू जब तक शिष्य को कार्यक्रम प्रस्तुत करने के अनुकूल नहीं समझता था तब तक शिष्यों को कार्यक्रम प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं होती थी। बल्कि शिष्य को कार्यक्रम के योग्य समझने के पश्चात शिष्य को संगीतकारों के मध्य प्रस्तुत किया जाता था जिससे वह सभी संगीतज्ञों का आशीर्वाद प्राप्त करें। इस प्रकार की संगीत शिक्षा में शिष्य, गुरू के सानिध्य में संगीत के गूढ़ रहस्यों को जानता था। संगीत में घराने स्थापित हुए एवं घरानों की शिक्षा इस संगीत शिक्षा पद्धति में ही सम्भव थी। शिष्य अपने गुरू के घराने से सम्बन्धित हो जाता था और उस घराने का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में अपना गौरव समझता था।

4.4.2.2 संगीत संस्थानों द्वारा संगीत शिक्षा – आधुनिक समय में संगीत संस्थानों का महत्व बढ़ गया है। पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे एवं विष्णुदिग्बर पलुस्कर ने संगीत शिक्षा का प्रचार इस प्रकार किया जिससे संगीत क्रियात्मक रूप में विकसित होने लगा। गुरूमुख शिक्षा पद्धति में बहुत कम लोग ही शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। अतः दो संगीत मनीषियों ने संगीत के अधिक प्रचार एवं प्रसार हेतु संगीत संस्थानों की कल्पना कर पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा लखनऊ में 'मैरिस कालेज आफ म्यूजिक' एवं विष्णुदिगम्बर

पलुस्कर द्वारा पूना में 'गन्धर्व मंडल' की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत देश के कई शहरों में 'गन्धर्व संगीत महाविद्यालय' के नाम से संगीत शिक्षण संस्थान खोले गए। यह संगीत शिक्षण की औपचारिक व्यवस्था का आरम्भ था। इन संस्थानों में प्रत्येक वर्ष के लिए पाठ्यक्रम निश्चित किए गए तथा वर्ष के अन्त में परीक्षा की भी व्यवस्था की गई। इन संस्थानों में संगीत के गुणीजन, गुरू अथवा उस्तादों को संगीत शिक्षा हेतु आमंत्रित किया गया और इनके लिए किसी प्रकार के औपचारिक प्रमाण–पत्रों की बाध्यता नहीं रखी गई ।

संगीत के विद्यार्थियों को परीक्षा में सफल होने पर औपचारिक प्रमाण–पत्र देने की व्यवस्था भी की गई। संगीत की हर विधा और हर अंग के लिए विशेषज्ञ रखे गए। प्रतिदिन संगीत शिक्षा का समय भी निर्धारित किया गया तथा अन्य संस्थानों की भाँति इन संस्थानों में भी उत्सव एवं त्यौहारों पर अवकाश का प्राविधान था। जबकि गुरूमुख शिक्षा पद्धति में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं रहती थी और शिष्य को गुरू के पास रहकर ही सीखना होता था और गुरू द्वारा शिष्य को किसी समय भी शिक्षा के लिए बुला लिया जाता था जिसमें शिष्य को उपस्थित होना आवश्यक होता था। संगीत संस्थानों की शिक्षा में शिष्य गुरू के सानिध्य में निश्चित समय के लिए ही रहता है और प्राप्त की गई शिक्षा का अभ्यास स्वयं घर पर ही करता है। संगीत संस्थानों की शिक्षा पद्धति में गुरू का शिष्य के ऊपर नियंत्रण गुरूमुखी शिक्षा पद्धति की अपेक्षा कम रह पाता है। प्रारम्भ में इन संस्थानों में संगीत की शिक्षा हेतु पाँच से छः वर्षों का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। संस्थानों में पाँच, छः वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी यह माना गया कि इसके पश्चात भी शिष्य को गुरू के सानिध्य की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इन दो संस्थानों की स्थापना के पश्चात प्रयाग(इलाहाबाद) में 'प्रयाग संगीत समिति' एवं पंजाब के चंडीगढ़ क्षेत्र में प्राचीन कला संगीत संस्थान की स्थापना हुई। इन सभी संस्थानों ने देश के भिन्न–भिन्न शहरों में अपने केन्द्र स्थापित किए। यद्यपि इन केन्द्रों पर शिक्षा का प्रचार हुआ एवं विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र मिलने लगे।

गुरूमुखी शिक्षा में गुरू एवं शिष्य दोनों का ही लक्ष्य कलाकार बनना तथा बनाना होता था जिसके लिए शिष्य द्वारा अनुशासित अभ्यास किया जाता था और संगीत ही एकमात्र लक्ष्य रहता था। संगीत संस्थानो में ऐसे भी विद्यार्थी शिक्षा लेते थे जिनका लक्ष्य केवल संगीत ही नहीं होता था बल्कि संगीत की शिक्षा शौकिया रूप में लेते थे। अतः संगीत संस्थानों में संगीत के विद्यार्थियों को समूह में एकरूपता नहीं रहती थी। गुरू द्वारा भी एक ही कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को लगभग एक जैसी ही शिक्षा दी जाती थी जो कि संस्थानों के शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता एवं सीमा भी थी। अतः संगीत संस्थानों से शिष्य उस प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते थे जिस प्रकार की शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में प्राप्त होती थी। संगीत संस्थानों का उद्देश्य संगीत शिक्षा के माध्यम से संगीत का प्रचार एवं प्रसार था और यह सामान्य रूप से संस्थानों के उदेद्श्य के बारे में कहा जाता था कि संस्थान तानसेन नहीं तो कानसेन तो बना ही देते हैं। अर्थात संगीत कलाकार न भी बन पाएं तो एक संगीत का अच्छा श्रोता तो बन ही जाता है। इन संगीत संस्थानों ने विभिन्न शहरों में अपने परीक्षा केन्द्र खोले जहाँ पर संगीत शिक्षा देने का भी प्रावधान किया गया तथा विद्यार्थी इन केन्द्रों से संगीत सीखकर प्रमाण–पत्र प्राप्त करने लगे। इन प्रमाण–पत्रों को सरकार के शिक्षा निदेशालय द्वारा मान्यता प्रदान की गई।

विद्यालयों में बिना इन संस्थानों के प्रमाण–पत्र के नियुक्तियाँ नहीं होती हैं। विद्यालय स्तर पर शिक्षक के लिए अन्य विषयों में बी. एड. अनिवार्य अर्हता है परन्तु संगीत विषय में शिक्षक होने के लिए बी. एड. के स्थान पर 'संगीत विशारद' एवं 'संगीत प्रभाकर' होना आवश्यक है जो कि इन संस्थानों द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र है। इस व्यवस्था से इन केन्द्रों पर संगीत के प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ गई। इन संगीत संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात कलाकार बनने के इच्छुक विद्यार्थियों को

गुरू शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही शिक्षा लेना अनिवार्य रहता है इन संस्थानों द्वारा सामान्य संगीत के जिज्ञासु एवं विद्यार्थियों ने संगीत के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4.4.2.3 विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत शिक्षा – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय अन्य विषयों की भाँति संगीत विषय पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में संगीत विषय का पाठ्यक्रम तैयार कर समय–सारिणी में वादन (पीरियड) शिक्षण के लिए निश्चित किया गया। इनमें शिक्षण पाठ्यक्रम के अनुसार ही दिया जाता है और अध्यापक द्वारा सब विद्यार्थियों को समान रूप से ही अध्यापन कराया जाता है। स्नातक स्तर तक एक वादन प्रायः 45 मिनट का होता है जो कि संगीत की व्यवहारिकता के अनुकूल नहीं है क्योंकि 45 मिनट के अन्दर ही वाद्यों को स्वर में करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः देखा जा रहा है कि विश्वविद्यालय स्तर पर भी संगीत की मूल आवश्यकता वाद्यों को स्वर में करना विद्यार्थी पूर्ण से नहीं सीख पाते हैं। स्नातक स्तर तक विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को संगीत विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करना होता है। अतः विद्यार्थी संगीत के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं हो पाता है। संगीत की आवश्यकता होती है, जिसमें अधिक से अधिक समय देने से ही संगीत कला को समझा जा सकता है।

विद्यालय, विश्वविद्यालय में संगीत विषय प्रारम्भ होने से संगीतज्ञों को व्यवसाय तो प्राप्त हुआ परन्तु इससे संगीत शिक्षा की गुणात्मकता पर प्रभाव पड़ा। यद्यपि विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में संगीत के विद्वान भी नियुक्त हुए परन्तु इन संस्थानों की व्यवस्था में उतने समय के लिए संगीत शिक्षक भी सीमा में बँध गए। संगीत संस्थानों में गुरू परम्परा पद्धति में शिष्य पूर्ण रूप से संगीत के वातावरण में रहता था और संगीत संस्थानों में भी जितने समय के लिए वह संस्थान में है उतने समय तक वह संगीत के वातावरण में रहता था। परन्तु विद्यालय और विश्वविद्यालय में विद्यार्थी केवल संगीत के वादन (पीरियड) में ही संगीत के वातावरण से जुड़ा रहता है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों से उपाधि सामान्य रूप में मिलती है जिसमें संगीत एक विषय के रूप में रहता है जबकि संगीत संस्थानों में मिलने वाली उपाधि एवं प्रमाण पत्र केवल संगीत का ही मिलता है और गुरू–शिष्य परम्परा में तो कोई औपचारिक प्रमाण–पत्र नहीं होता है। इसमें शिष्य स्वयं अपनी शिक्षा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय शिक्षा, स्नातकोत्तर उपाधि के लिए दी जाने लगी है, जिसमें केवल संगीत विषय का ही अध्ययन विद्यार्थी को करना होता है।

विश्वविद्यालय स्तर पर केवल स्नातकोत्तर कक्षाओं में ही विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है जो मात्र दो वर्ष के पाठ्यक्रम में निबद्ध होता है। संगीत की शिक्षा गुणात्मकता के साथ स्नातकोत्तर स्तर पर ही हो पाती है जिसका स्वरूप संगीत संस्थानों की शिक्षा जैसा रहता है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में विद्यार्थियों को संगीत के अध्ययन और अभ्यास का समय प्राप्त होता है। विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातक की कक्षाओं में संगीत विषय का विद्यार्थी सीमित समय जो कि उसके लिए समय सारिणी में निश्चित किया गया उसमें ही संगीत शिक्षक के सम्पर्क में रहता है। इसी उपलब्ध समय में शिक्षक का उद्देश्य निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करने का भी होता है। अतः गुरू शिष्य परम्परा पद्धति एवं संगीत संस्थान द्वारा शिक्षा पद्धति की तुलना में विश्वविद्यालय द्वारा दी जाने वाली संगीत शिक्षा की गुणवत्ता में कमी रहती है। स्नातकोत्तर में भी यही स्थिति रहती है परन्तु इसमें विद्यार्थी तथा शिक्षक के पास संगीत विषय के लिए अधिक समय रहता है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थी विश्वविद्यालय शिक्षा के अतिरिक्त संगीत संस्थानों एवं गुरू की सहायता भी प्राप्त करते हैं। संगीत में शिक्षक बनने हेतु विश्वविद्यालय प्रमाण–पत्र की आवश्यकता होती है अतः

विद्यार्थी संगीत हेतु विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है। केवल विश्वविद्यालय की संगीत शिक्षा से विद्यार्थी का कलाकार बनना कठिन है और न ही विश्वविद्यालय का यह उदेश्य ही है। विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को संगीत पढ़ाने का उद्देश्य है कि विषय से सम्बन्धित आयामों से विद्यार्थी को परिचित कराया जा सके जिससे वह भविष्य के लिए अपने विकल्प चुन सके।

विश्वविद्यालय की उपाधि प्रमाण–पत्र का महत्व संगीत की शिक्षक अर्हता के रूप में ही है। व्यवसायिक कलाकार बनने में इसका कोई महत्व नहीं है। विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत शिक्षक हेतु अर्हताएं व्यवहारिक नहीं हैं जिससे इनमें सदैव योग्य संगीत शिक्षक नियुक्त नहीं हो पाते हैं। संगीत विषय मुख्य रूप से क्रियात्मक विषय है परन्तु नैट की परीक्षा जो कि विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षक के लिए पास करना अनिवार्य अर्हता है। परन्तु इस परीक्षा में संगीत विषय हेतु विद्यार्थी के क्रियात्मक ज्ञान को नहीं परखा जाता है जबकि संगीत विषय के शिक्षक के लिए क्रियात्मक ज्ञान होना आवश्यक है।

अभी तक आपने संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध हेतु भूमिका एवं विषय वस्तु का अध्ययन किया जो कि निबन्ध लेखन के लिए उदाहरण स्वरूप आपको बताया गया। किसी विषय के निबन्ध पर उपसंहार लिखने के विषय में संगीत शिक्षा विषय निबन्ध पर नीचे लिखे गए उपसंहार से समझेंगे।

4.4.3 उपसंहार संगीत शिक्षा विषय पर – संगीत शिक्षा गुरू शिष्य परम्परा, संगीत संस्थानो के माध्यम से विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में एक विषय के रूप में दी जाती है। गुरू शिष्य परम्परा में गुरू और शिष्य के मध्य अटूट सम्बन्ध बन जाता है और शिष्य गुरू के सानिध्य में रहकर संगीत के गूढ़ रहस्यों को सीखता है। इसमें गुरू एवं शिष्य दोनों का उद्देश्य कलाकार बनाना तथा बनना होता है। संगीत संस्थानों में भी केवल संगीत शिक्षा दी जाती है जिसमें विद्यार्थी सीमित समय के लिए ही गुरू के सम्पर्क में रहता है और विश्वविद्यालय शिक्षा में स्नातक स्तर पर तो बहुत ही कम समय के लिए विद्यार्थी संगीत के वातावरण में रहता है। परन्तु संगीत शिक्षक बनने हेतु संस्थानों एवं विश्वविद्यालय में प्रमाण–पत्रों की आवश्यकता होती है।

संगीत के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक है कि वह संस्थानों की शिक्षा अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ गुरू शिष्य परम्परा पद्धति में भी किसी गुरू से शिक्षा प्राप्त करे जिससे उसके पास संगीत शिक्षक का व्यवसाय अथवा व्यवसायिक कलाकार बनने का विकल्प रहेगा। उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष न निकाला जाए कि विश्वविद्यालय संगीत शिक्षा से ही अच्छा संगीत शिक्षा बन सकता है जबकि संगीत की सही शिक्षा प्राप्त ही अच्छा शिक्षक बनेगा। वर्तमान व्यवस्था में संगीत शिक्षक हेतु सभी माध्यमों का अपना महत्व है अतः विद्यार्थी को अपने निश्चित उद्देश्य के लिए इनका चयन करने की आवश्यकता है।

संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध के माध्यम से आपने निबन्ध लेखन के विषय में अध्ययन किया। कुछ अन्य संगीत सम्बन्धित विषयों की सूची दी जा रही है।

अभ्यास हेतु निबन्ध के विषय

1. फिल्मो में संगीत
2. संगीत में इलक्ट्रॉनिक उपकरणों का योगदान
3. लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत
4. भक्ति एवं संगीत
5. संगीत एवं अध्यात्म
6. संगीत एवं संचार माध्यम (रेडियो व टी0वी0)

7. संगीत में अवनद्य वाद्यों की भूमिका 8. संगीत गोष्ठी

जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि प्रत्येक विषय के निबन्ध का आरम्भ भूमिका से किया जाता है और निबन्ध का समापन उपसंहार से किया जाता है। उपरोक्त विषयों की विषयवस्तु नीचे दी जा रही है जिसके आधार पर आप इन विषयों पर निबन्ध लिख सकेंगे।

1. फिल्मों में संगीत
   - विषयवस्तु
   - फिल्म में संगीत का प्रयोग
   - पार्श्व गायन
   - फिल्म में वाद्यों का प्रयोग
   - गायन के साथ वाद्यों का प्रयोग
   - पार्श्व संगीत में वाद्यों का प्रयोग
   - फिल्मों में संगीत का स्थान एवं उपयोगिता

2. संगीत में इलक्ट्रॉनिक उपकरणों का योगदान
   - विषयवस्तु
   - संगीत में प्रयोग होने वाले इलक्ट्रोनिक उपकरण

     (अ) – इलक्ट्रॉनिक तानपुरा

     (ब) – इलक्ट्रॉनिक तबला

     (स) – इलक्ट्रॉनिक लहरा मशीन
   - संगीत के संरक्षण एवं शिक्षा में सहायक इलक्ट्रॉनिक उपकरण

     1. ग्रामोफोन 2. टेपरिकार्डर

3. लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत
   - विषयवस्तु
   - लोक संगीत की पृष्ठभूमि
   - शास्त्रीय संगीत का परिचय
   - लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का सम्बन्ध

4. भक्ति एवं संगीत
   - विषयवस्तु
   - भक्ति की व्याख्या
   - विभिन्न धर्मों में भक्ति हेतु संगीत का प्रयोग

     1. हिन्दू 2. मुस्लिम 3. सिख 4. इसाई

5. <u>संगीत एवं आध्यात्म</u>
   - विषयवस्तु
   - संगीत की उत्पत्ति
   - वैदिक कालीन संगीत
   - आध्यात्म में संगीत का महत्व

6. <u>संगीत एवं संचार माध्यम</u>
   - विषयवस्तु
   - रेडियो में संगीत
   - टेलीविजन में संगीत
   - रेडियो तथा टेलीविजन का संगीत के प्रचार–प्रसार में भूमिका

7. <u>संगीत में अवनद्य वाद्य की भूमिका</u>
   - विषयवस्तु
   - संगीत का परिचय
   - संगीत के तत्व
   - संगीत के अवनद्य वाद्य
   - संगीत में अवनद्य वाद्यों का प्रयोग

8. <u>संगीत गोष्ठी</u>
   - विषयवस्तु
   - संगीत गोष्ठी का परिचय
   - संगीत गोष्ठी में कलाकार की भूमिका
   - विभिन्न प्रकार की संगीत गोष्ठी
   - संगीत गोष्ठी के श्रोता

उपरोक्त कुछ विषय आपके निबन्ध लेखन के अभ्यास के लिए दिए गए हैं। इन सभी विषयों पर आप निबन्ध लिखने का अभ्यास ऊपर अध्ययन कराई विधि के अनुसार करेंगे। सभी विषयों पर निबन्ध के अवयव का क्रम भूमिका, विषयवस्तु एवं उपसंहार रहेगा। उपसंहार एवं भूमिका के प्रभावशाली होने से आपका निबन्ध उच्चस्तर का होता है यद्यपि विषय वस्तु भी महत्वपूर्ण है। उपसंहार में विषय वस्तु में की गई चर्चाओं अथवा विवरणों से प्रकट तथ्यों को परिणाम स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है। आप को इन सबका ज्ञान संगीत शिक्षा विषय पर उदाहरण स्वरूप निबन्ध के माध्यम से दिया गया है। अतः उसी आधार पर आप उपरोक्त विषयों पर निबन्ध लेखन का अभ्यास करें।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निबन्ध लेखन की शैली से परिचित हो चुके होंगे। संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन की शैली एवं विद्या से आपको इस इकाई के माध्यम से परिचित कराया गया। निबन्ध लेखन से आप अपने विचारों को लेखन के माध्यम से प्रकट करने की तकनीक विकसित करते हैं जो बाद में आपको शोधपत्र, लेख एवं शोध कार्य में सहायक सिद्ध होगी। उदाहरण स्वरूप दिए गए संगीत शिक्षा विषय पर निबन्ध से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लेखन के विषय जान गए हैं एवं संगीत विषय पर लिखने में सक्षम होंगे। संगीत के गहन अध्ययन एवं संगीत के सन्दर्भों के अध्ययन से आप संगीत विषयों पर निबन्ध लिखने में सक्षम हो गए होंगे।

4.6 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. गर्ग, श्री लक्ष्मीनारायण, *निबन्ध संगीत*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इकाई में दिए गए अभ्यास हेतु निबन्ध विषयों में से किसी एक विषय पर निबन्ध लेखन कीजिए।

इकाई 5– पाठ्यक्रम के रागों भूपाली एवं देश में छोटा ख्याल/ रज़ाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना ।प्रस्तावना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 पाठ्यक्रम के रागों में छोटा ख्याल व तानें
5.3.1 भूपाली
5.3.2 देश
5.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोडें
5.4.1 राग भूपाली में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना
5.4.2 राग देश में रजाखानी़ गत व तोडों को लिपिबद्ध करना
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–221) के चतुर्थ सेमेस्टर की पंचम इकाई है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप निबन्ध लेखन की विधि तथा निबन्ध लेखन के अवयवों बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में छोटे ख्याल व तानों एंव, रजाखानी गत व तोड़ों को इस पद्धति में लिपिबद्ध करना भी सविस्तार समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न रागों के स्वरूप एवं गतों को स्वरलिपिबद्ध कर लिखित रूप में उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- भारतीय संगीत के स्वरों, वर्णों, अलंकारों तथा राग रचनाओं के विभिन्न स्वरूपों को स्वरलिपि पद्धति में लिख पाएंगे।
- आवश्यकता होने पर स्वरलिपि को पढ़ व समझ कर पुनः प्रस्तुति करने में सक्षम हो सकेंगे।
- स्वरों के विभिन्न स्वरूपों–शुद्ध, कोमल व तीव्र को सहज रूप में लिख कर प्रदर्शित कर सकेंगे।
- संगीत के विभिन्न सप्तकों को चिन्हित कर सकेंगे।
- संगीत के वर्णों–स्थायी, आरोही, अवरोही व संचारी को स्वरलिपि के माध्यम से भली–भॉति समझ सकेंगे।
- संगीत की राग रचनाओं, गतों के प्रकारों को स्वरलिपि में लिख सकेंगे तथा बार–बार पढ़ कर कंठस्थ कर सकेंगे, जिससे प्रस्तुतीकरण में सहजता प्राप्त होगी।
- स्वरलिपि के साथ ही काललिपि का भी ज्ञान आपको प्राप्त होगा। जिससे राग रचना अथवा गतों को विभिन्न भारतीय तालों में लिख सकेंगे तथा अपने वाद्य में सहजता से लय–ताल में प्रस्तुति देने में सफल हो सकेंगे।

5.3 पाठ्यक्रम के रागों में छोटा ख्याल व तानें

5.3.1 राग भूपाली – त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

रे		रे			सा		सा		ध़		ग	रे			
ग	रे	ग	रे	सा	रे	सा	ध़	–	सा	–	रे	ग	–	–	–
ज	ब	से	ऽ	तु	म	स	न	ऽ	ला	ऽ	ग	ली	ऽ	ऽ	ऽ
0				3				×				2			
प		ग		ग	प		प			सां					
ग	–	प	प	प	ध	प	ग	ग	प	ध	सां	पध	सां	धप	गरे
पी	ऽ	त	न	वे	ऽ	ली	ऽ	प्या	रे	ब	ल्मा	ऽऽ	ऽ	मोऽ	रीऽ
0				3				×				2			

अन्तरा

प		प		ग		प	सां	ध				ध			
ग	–	ग	–	प	प	सां	ध	सां	–	सां	–	सां	रें	सां	–
जो	ऽ	नै	ऽ	न	न	ना	ऽ	दे	ऽ	खो	ऽ	तो	ऽ	हे	ऽ
×				2				0				3			
	गं	रें			सां		सं	ध	सां			प	प	ग	प
सां	रें	गं	रे	सां	रें	सां	पध	सां	ध	–	प	ग	रे	ग	प
क	ल	ना	प	र	त	मो	हेऽ	च	र्चा	ऽ	क	रे	ऽ	स	ब
×				2				0				3			
प				प											
सांध	सां	पध	सां	ध	प	ग	रे								
सेऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ल	रि	यॉं	ऽ								
×				2											

स्थायी की तान

सारे	गप	धसां	पध	सांसां	धप	गरे	सा–
×				2			
सारे	गप	धसां	रेंसां	धप	गरे	सारे	ग–
×				2			
सारे	गग	रेग	पप	गप	धप	गरे	सा–
×				2			

गग	रेग	पप	गप	पप	गप	गरे	सा–
×				2			
पप	गप	पग	पप	पप	गप	गरे	सा–
×				2			
सांसां	धसां	सांध	सांसां	पप	गप	गरे	सा–
×				2			

<u>अन्तरे की तान</u>

सांसा	धप	गरे	सारे	गरे	गप	गप	धसां
0				3			
सारें	सांध	सांसां	धप	गप	धसां	पध	सां–
				3			
सारे	गरें	संसां	धप	गप	धसां	पध	सां–
0				3			

5.3.2– राग देश

राग देश मध्यलय ख्याल – त्रिताल

स्थाई – मेहा रे वन वन डार–डार, मुरला बोले, मेहा बोछारन बरसे।
अन्तरा – कारि घटा घन –फिर उमड़ावत पपिहा बोले सदा रंग मनवा लरजे।।

स्थाई

														म	प
														मे	ऽ
सां					नि										
नि	–	सां	–	सां	रें	सां	नि	ध	प	ध	(म)	–	म	प	प
हा	ऽ	रे	ऽ	व	न	व	न	डा	ऽ	र	डा	ऽ	र	मु	र
×				2				0				3			
मप	ध	म	–	रे	–	–	–	सां	–	नि	–	ध	प	म	प
वाऽ	ऽ	बो	ऽ	ले	ऽ	ऽ	ऽ	मे	ऽ	हा	ऽ	ऽ	ऽ	बो	ऽ
×				2				0				3			
ध	–	(म)	ग	म	ग	रे	–	रेग	मप	धप	मग	रेग	सारे	म	प
छा	ऽ	र	न	ब	र	से	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	मे	ऽ
×				2				0				3			

अन्तरा

प															
म	–	म	म	प	–	नि	नि	सां	सां	सां	सां	नि	सां	सां	सां
का	ऽ	रि	घ	टा		घ	न	फि	र	उ	म	ड़ा	ऽ	व	त
×				2				0				3			
गं	गं							नि							
रे	रेग	रें	सां	रें	नि	सां	–	सां	सां	–	नि	–	ध	म	प
प	पिऽ	या	ऽ	बो	ऽ	ले	ऽ	स	दा	ऽ	रं	ऽ	ग	म	न
×				2				0				3			
मप	ध	म	मग	रे	–	–	–	सां	–	नि	–	ध	–	म	प
वाऽ	ऽ	ल	रऽ	जे	ऽ	ऽ	ऽ	मे	ऽ	हा	ऽ	ऽ	ऽ	बो	ऽ
×				2				0				3			
ध	–	(म)	म	म	ग	रे	–	रेग	मप	धप	मग	रेग	सारे	म	प
छा	ऽ	र	न	ब	र	से	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	मे	ऽ
×				2				0				3			

आलाप – स्थाई (8 मात्रा)

1.	हा	ऽ	रे	ऽ	व	न	व	न	रे	नि़	सा	–	रेम	गरे	मे	ऽ
	×				2				0				3			
2.	हा	ऽ	रे	ऽ	व	न	व	न	नि़सा	रेम	गरे	ग	नि़	सा	मे	ऽ
	×				2				0				3			
3.	हा	ऽ	रे	ऽ	व	न	व	न	रेग	मग	रे	–	ग	नि़	सा	मेऽ
	×				2				0				3			
4.	रे	म	प	–	नि॒	ध	प	–	ध	म	गरे	ग	नि	सा	मे	ऽ

	×				2				0				3			
5.	प	नि̱	ध	प	रे	म	प	–	रे	म	प	नि	सां	नि	सां	–
	×				2				0				3			

आलाप – अन्तरा (8 मात्रा)

1.	का	ऽ	रि	घ	टा	ऽ	घ	न	रे	म	प	नि	सां	नि	सां	–
	×				2				0				3			
2.	का	ऽ	रि	घ	टा	ऽ	घ	न	सां	नि	ध	प	रेम	पनि	सां	–
	×				2				0				3			
3.	का	ऽ	रि	घ	टा	ऽ	घ	न	रे	म	प	नि	सां	रें	नि	सां
	×				2				0				3			
4.	का	ऽ	रि	घ	टा	ऽ	घ	न	रें	–	गं	–	नि	नि	सां	–
	×				2				0				3			

तानें – स्थाई

1.	सारे	मप	निसां	नि̱ध	पध	मग	रेसा	सा–
	×				2			
2.	रेम	पनि	सांनि̱	धप	पध	मग	रेसा	सा–
	×				2			
3.	पध	मग	रेम	पध	मग	रेग	सारे	मप
	×				2			
4.	पध	मग	रेम	पध	पध	मग	रेग	सा–
	×				2			

तानें – अन्तरा

1.	सांनि̱	सांनि̱	धप	मप	रेम	रेम	पनि	सां–
	×				2			
2.	मप	निसां	नि̱ध	पध	मग	रेम	पनि	सां–
	×				2			
3.	पनि	सांप	निसां	नि̱ध	पध	मप	निनि	सां–
	×				2			
4.	पनि	सारें	मंगं	रेंसां	नि̱ध	मप	निनि	सां
	×				2			

अभ्यास प्रश्न

क. एक शब्द में उत्तर दीजिए:–

1. एकताल में कौन से ख्याल गाए जा सकते हैं?
2. तीनताल में कितनी मात्राएं तथा विभाग होते हैं?
3. राग देश का वादी स्वर क्या है?
4. राग भूपाली की जाती क्या है?

ख. लघु उत्तरीय प्रश्न:–

1. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में मध्यलय ख्याल को तानों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

5.4 पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत व तोडें

5.4.1 राग भूपाली में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
											सारे	गप	धसां	धप	गरे
											दारा	दारा	दारा	दारा	दारा
x				2				0				3			
ग	ग	साऽ	ऽसा	सा	ध़	ध़	साऽ	ऽसा	सा	सारे	गप	धसां	धप	गरे	सारे
दा	रा	दाऽ	ऽर	दा	दा	रा	दाऽ	ऽर	दा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा	दारा
x				2				0				3			

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
गऽ	गग	प	ध	सां	ऽ	सां	सां	ध	सांसां	रें	ऽ	सां	ऽ	ध	प
दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दा	ऽ	दा	ऽ	दा	रा
x				2				0				3			
प	धध	सां	प	धध	सां	प	ध	ग	पप	रे	ग	सा	रेरे	ध़	सा
दा	दिर	दा	दा	दिर	दा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x				2				0				3			
ग	ग	साऽ	ऽसा	सा	ध़	ध़	सऽ	ऽसा	सा						
दा	रा	दाऽ	ऽर	दा	दा	रा	दाऽ	ऽर	दा						
x				2				0				3			

रजाखानी गत के तोड़ों

तोड़े–स्थाई :–

3

1. ध़सा रेग सारे गप । धसां धसां धप गरे ।
2. सारे गप धसां धसां । रेंग रेंसां धप गरे ।
3. प़ध़ सारे गग रेसा । ध़सा रेग गग रेसा ।

तोडे–अन्तरा:–

0

1. गप धप गरे सारे । गप धप गरे गऽ ।
2. ध़सा रेग गग रेसा । सारे गप गग रेसा ।
3. सारे गसा ऽरे गप । धसां धप गरे सारे ।

सम से सम तक :–

x

1. प़ध़ सारे गरे साध़। गप धसां धप गरे ।
पध सारें गरें सांध। धसां धप गरे सारे।

2. सारे गप धग धप । गरे सारे ध़सा पध ।
पध सारे गऽ पध । सारे गऽ सारे गऽ ।

2. प़ध़ सारे गरे सारे । सारे गप धप गरे।
गप धसां रेंसां धप । धप गरे गरे सार।

5.4.2 राग देश में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना

रजाखानी गत

स्थाई

म	गग	रे	म	–	पप	नि	नि	सां	–	सां	रें	सां	निनि	ध	प
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा
0				3				×				2			
प	निनि	ध	प	म	ग	ऽ	रे	रे	पप	म	ग	रे	ग	–	सा
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	ऽ	रा
0				3				×				2			

अन्तरा

नि	धध	प	म	–	पप	नि	नि	सां	–	नि	सां	मं	गंगं	रें	सां
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	दा	दा	दिर	दा	रा
0				3				×				2			
नि	सांसां	रें	सां	–	निनि	ध	प	रे	पप	म	ग	रे	ग	–	सा
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	ऽ	रा
0				3				×				2			

आठ मात्रा के तोड़ों को लिपिबद्ध करना :–

तोड़ा नं. 1(सम से)

मप	निसां	पनि	सांनि	धप	मग	रेग	सा–
×				2			

तोड़ा नं. 2(सम से)

मप	निसां	रेंरें	सांरें	सानि	धप	मग	रेसा
×				2			

तोड़ा नं. 3(सम से)

निसां	मंगं	रेंसां	निध	पध	मग	रेग	सा–
×				2			

सोलह मात्रा के तोड़ों को लिपिबद्ध करना :–

तोड़ा नं. 1(खाली से)

निसा	रेम	सारे	मप	रेम	पध	मप	निसां	
0				3				
पनि	सारें	सारें	सानि	धप	मग	रेग	सा–	मुखडा
×				2				0

तोड़ा नं. 2(खाली से)

मग	रेसा	निसा	रेम	निध	पम	रेम	पनि	
0				3				
सारें	मंगं	रेंसां	निध	पध	मग	रेग	सा–	मुखडा
×				2				0

अभ्याास प्रश्न

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. राग भूपाली का वादी स्वर क्या है?
2. राग देश गायन समय क्या है?

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राग राग भूपाली का परिचय दीजिए।
2. पाठ्यक्रम के किसी एक राग में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप स्वरों की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से गायन करने में सक्षम होंगे। ख्याल गायन के अन्तर्गत आने वाले बड़े ख्याल व छोटे ख्याल की रचनाएँ आपके पाठ्यक्रम के रागों में दी गई हैं। इन रागों का तानों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तानों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे एवं आप अपने पाठ्यक्रम के रागों का ख्याल गायन शैली में गायन प्रस्तुत कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राग की अन्य रचनाओं की स्वरलिपि को भी समझ कर गा सकने में सक्षम होंगे।

रजाखानी गतों को लिपिबद्ध करने की इस विधि से आप समझ गए होंगे कि गायन में छोटे ख्याल व ठुमरी आदि सुरूचिपूर्ण संरचनाओं के प्रभाव से स्वर वाद्यों में भी प्रभावपूर्ण संरचनाओं को प्रस्तुत करने हेतु प्रयास हुए और अत्यन्त सुघड़ वादन शैली की खोज हुई। द्रुत लय में रागों की अदायगी हेतु लखनऊ के गुलाम खाँ ने रजाखानी गत को विकसित किया जो कि पूरबी बाज के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अपने मूल स्वरूप में रजाखानी गत भी तीनताल में ही बजाई जाती थी और अत्यन्त लोकप्रिय हो गई। वादक कलाकारों ने रजाखानी गत को भी अन्य तालों एकताल, झपताल व रूपक आदि में ढाल कर रजाखानी गतों को लालित्य पूर्ण आयाम प्रदान किया है। आप रजाखानी गतों की रिकार्डिंग्स जो कि वर्तमान काल के कलाकरों स्व उ0 विलायत खाँ, स्व0 पं0 निखिल बनर्जी, पं0 रविशंकर, स्व उ0 अली अकबर खाँ, उस्ताद अमजद अली खान आदि द्वारा बजाई गई हैं, को सुनकर समझ पाएंगे कि मीड़, मुर्की, गमक, कृन्तन, जमजमा व घसीट आदि को कितनी खूबसूरती से आपने रजाखानी गत में पिरोया है।

इन गतों को लिपिबद्ध करने तथा इनके तोड़ों को लिपिबद्ध कर समायोजित करने की इस विधि का ज्ञान प्राप्त कर आप इनको भविष्य हेतु सुरक्षित रखने का भी प्रयास करेंगे।

5.6 शब्दावली

1. **पूर्वी बाज** – लखनऊ के गुलाम रजा द्वारा विकसित रजाखानी गत की वादन शैली को पूर्वी बाज कहते हैं।
2. **दा,रा,दिर** – स्वर वाद्यों के अन्तर्गत तत् वाद्य में आघात से उत्पन्न बोलों को इन नामों से जाना जाता है।
3. **रजाखानी गत** – स्वर वाद्यों में मुख्य रूप से तत् वाद्यों में द्रुत गति से बजने वाली राग रचनाओं को रजाखानी गत कहा जाता है। इसकी खोज लखनऊ के गुलाम रजा द्वारा की गई।
4. **तोड़ा** – रागों को विस्तार करने हेतु गतों में बजने वाली विशेष संरचनाओं को तोड़ा कहते हैं जो कि तैयारी से बजायी जाती है तथा दुगुन व चौगुन आदि लय में इनका प्रयोग होता है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. एक शब्द में उत्तर दीजिएः–

.1. विलम्बित ख्याल 2. 16 मात्रा व 4 विभाग

3. रिषभ 4 औडव–औडव

अ) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

1. ग
2. रात्रि का दूसरा प्रहर

5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, विष्णु नारायण, कमिक पुस्तक मालिका भाग–3 व 4।
3. झा, रामाश्रय, अभिनव गीतांजली।
4. श्रीवास्तव, हरीशचन्द्र, मधुर स्वरलिपि संग्रह।
5. श्रीवास्तव, प्रो0 हरिशचन्द्र, **प्रवीण प्रवाह**, संगीत सदन प्रकाशन, 88 साउथ मलाका, इलाहाबाद।
6. नायक, श्रीमती गायत्री, **सुरों की सहयात्रा**, मनोहर नायक,16 पंचदी अपार्टमेंट विकास पुर, नई दिल्ली।
7. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण(सं0), **संगीत सितार** : गत–तोड़ो अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस।

5.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गुणे, पं0 नारायण लक्ष्मण, संगीत प्रवीण भाग–1, 2, 3 व 4।
2. गर्ग, डॉ0 लक्ष्मीनारायण(सं0), वाद्य वादन अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस।
3. महाडिक, डॉ0 प्रकाश, भारतीय संगीत के तंत्री वाद्य।
4. चौरसिया, ओम प्रकाश, वीणा–वाणी, संगीत कार्यालय हाथरस।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अपने पाठ्यक्रम के किसी एक राग में छोटे ख्याल की स्वरलिपि, स्थाई व अन्तरा सहित लिखिए।
2. पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 6– पाठ्यक्रम की तालों एकताल एवं कहरवा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों एकताल एवं कहरवा ताल के ठेकों को दुगुन व चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 तालों का परिचय एवं स्वरूप
    6.3.1 एकताल का सम्पूर्ण परिचय
    6.3.2 कहरवा ताल का सम्पूर्ण परिचय
6.4 तालों की लयकारियाँ
    6.4.1 एकताल की लयकारियाँ
    6.4.2 कहरवा ताल की लयकारियाँ
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम, माइनर वोकेशनल कोर्स (बी0ए0एम0एम0(एन)–221) के चतुर्थ सेमेस्टर की छठी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप विभिन्न रागों के स्वरूप एवं गतों को स्वरलिपिबद्ध कर लिखित रूप में समझ चुके होंगें।

प्रस्तुत इकाई में भातखण्डे जी द्वारा निर्मितताललिपि पद्धति का पूर्ण परिचय देते हुए पाठ्यक्रम की तालों को उदाहरण स्वरूप लिपिबद्ध भी किया गया है। साथ ही तालों की लयकारियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप ताललिपि पद्धति के महत्व को समझ सकेंगे। हिन्दुस्तानी संगीत से सम्बन्धित तालों के विभिन्न तत्वों को भी जान सकेंगे। गीत रचनाओं में तालों के प्रयोग एवं उन्हें लिपिबद्ध करने की पद्धति को भी आप समझ सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :–

- बता सकेंगे किताललिपि पद्धति द्वारा किस प्रकार ताल का क्रियात्मक स्वरुप प्रस्तुत किया जा सकता है।
- ताल सम्बन्धी समस्त तत्वों को समझते हुए उनके प्रयोग सम्बन्धी नियमों को भी जान सकेंगे।
- ताल के लयकारी सम्बन्धी पक्ष को समझते हुए संगीत में इनका प्रयोग कर सकेंगे।

6.3 तालों का परिचय एवं स्वरूप

6.3.1 एकताल का सम्पूर्ण परिचय :

मात्रा – 12, **विभाग** – 6, **ताली** – 1, 5, 9 व 11 पर तथा **खाली** – 3 व 7 पर

ठेका

धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	कत्त ता	धागे तिरकिट	धी ना	धिं
X	0	2	0	3	4	X

परिचय – एकताल में 12 मात्राएँ होती हैं। इसकी 12 मात्राएँ 6 विभागों में बटी रहती हैं। प्रत्येक विभाग 2 मात्रा का होता है। सम प्रथम स्थान, 'धिं' पर होता है। खाली के स्थान दो हैं तथा ताली के स्थान 4 हैं।

ख्याल गायन में 'विलम्बित ख्याल' के अन्तर्गत यह सबसे प्रमुख ताल है। प्रत्येक राग में अनेक बड़े ख्याल एकताल में निबद्ध होते हैं। वर्तमान में अनेक द्रुत ख्याल भी एकताल में निबद्ध हैं। कुछ वर्षों पूर्व एकताल अधिकतर 'विलम्बित ख्याल' में ही प्रयुक्त की जाती थी। एकताल का चक्र घूमता हुआ होता है, जिस प्रकार 'दादरा ताल' का ठेका घूमता हुआ होता है, क्योंकि यह 6 मात्रा की होती है। इसी प्रकार एकताल में ठीक उससे दुगुनी 12 मात्राएँ होती हैं और यह भी घूमती लय में बजती है। ख्याल गायन के क्षेत्र में यह ताल विशेष रूप से प्रयोग की जाती है। विलम्बित ख्याल में यह ताल बहुत धीमी लय में बजती है परन्तु **धागे तिरकिट** जैसे बड़े बोलों के कारण इसके भराव में आसानी हो जाती है। धीमी लय में मात्राओं को भरने के लिए यह बोल सहायता प्रदान करते हैं। ग्वालियर, आगरा, रामपुर एवं दिल्ली घराने के गायक अधिकतर इस ताल में बड़ा ख्याल गाते हैं परन्तु किराना घराने के गायक एकताल में बड़ा ख्याल गाते समय इसकी लय अतिविलम्बित कर देते हैं।

6.3..2 कहरवा ताल का सम्पूर्ण परिचय :

मात्रा – 8, **विभाग** – 2, **ताली** – 1 पर तथा **खाली** – 5 पर

ठेका

धा	गे	ना	ती	| ना	क	धी	ना	| धा
X				0				X

परिचय – कहरवा ताल में 8 मात्राएँ होती हैं। मात्राएँ 2 विभागों में बटी रहती हैं। प्रत्येक विभाग 4–4 मात्राओं का होता है। सम प्रथम मात्रा में 'धा' पर है। इस ताल में खाली का स्थान 1 हैं तथा ताली का स्थान भी 1 हैं।

कहरवा ताल चंचल प्रकृति का ताल है। इसका प्रयोग तबले, ढ़ोलक, नाल तथा खोल आदि वाद्यों पर किया जाता है। भाव संगीत, लोक संगीत तथा फिल्मी संगीत के साथ संगति के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें लग्गी, लड़ी तथा ठेके की किस्मों का प्रयोग होता है। कहरवा ताल सोलो वादन के उपयुक्त नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

---

1) **लघु उत्तरीय प्रश्न :**

(i) एकताल का परिचय दीजिए।
(ii) कहरवा का स्वरुप बताइए।
2) **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :**

(क) एकताल में तीसरी मात्रा पर .... होती है।

(ख) कहरवा व दादरा ताल में .... नहीं होता है।

3) **एक शब्द में उत्तर दीजिए :**

(i) एकताल किस गायन शैली में प्रयुक्त होती है?

6.4 तालों की लयकारियाँ

यदि कहा जाए कि लय के बिना संगीत संभव नहीं है तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समय की समान गति ही लय कहलाती है। लय एवं लयकारी में अन्तर होता है। लय यदि संज्ञा है तो लयकारी क्रिया है। लय और लयकारी दोनों एक–दूसरे पर आश्रित हैं। बिना लय के लयकारी भी सम्भव नहीं है। लय ही लयकारी का आधार है। लय अनेक प्रकार की हो सकती हैं परन्तु बहुत समय पहले से ही संगीत विद्वानों ने मुख्य रूप से इसके तीन प्रकार माने हैं।

1. विलम्बित लय   2. मध्य लय   3. द्रुत लय

इसके अतिरिक्त देखा जाए तो अतिविलम्बित या अति द्रुत लय भी होती है परन्तु मुख्य रूप से क्रमशः यह दोनों भी विलम्बित एवं द्रुत के अन्तर्गत आ जाती हैं, इसीलिए इन तीन मुख्य लय प्रकारों को ही सर्वसम्मति से मान्यता प्राप्त है।

अब आप लयकारी को जानेंगे। लयकारी की परिभाषा हम यह दे सकते हैं कि "संगीत में लय के विभिन्न दर्जे करने की क्रिया को लयकारी कहते हैं।" लय के दर्जे करने से तात्पर्य यह है कि कलाकार जब कलात्मक दृष्टि से कभी एक मात्रा में दो, तीन या चार मात्रा तथा कभी दो में तीन, चार में पाँच मात्रा पढ़कर/दिखाकर लय के चमत्कार का प्रदर्शन करता है तो इसी को लयकारी कहते हैं।

लय के समान ही लयकारी के भी विभिन्न प्रकार माने गए हैं परन्तु इसके भी दो मुख्य प्रकार हैं।

एक सीधी लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत दुगुन, चौगुन अठगुन आदि आते हैं। दूसरी आड़ की लयकारी होती है जिसके अन्तर्गत तिगुन, आड़, कुआड़ तथा बिआड़ आदि लयकारियाँ आती हैं।

लयकारियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की लयकारियाँ हो सकती हैं परन्तु पाठ्यक्रम के अनुसार आप सीधी लयकारियों को ही जान सकेंगे। विभिन्न तालों में सीधी लयकारी से सम्बन्धित दुगुन, चौगुन को आप जानेंगे। तालों में लयकारी करने से पूर्व आड़ लयकारियों के सम्बन्ध में मात्र एक परिचय जानना आवश्यक सा प्रतीत होता है। सीधी लयकारी के अतिरिक्त अन्य प्रकार की लयकारी को जिसके अन्तर्गत एक मात्रा में डेढ़ मात्रा, तीन मात्रा या सवा मात्रा आदि आते हैं, आड़ की लयकारी कहते हैं। परन्तु व्यापक दृष्टि से वर्तमान में आड़ का व्यापक अर्थ हो चुका है। आड़ का विशेष रूप से यह अर्थ है कि वह लयकारी जिसमें एक मात्रा में डेढ़ या दो मात्रा में तीन मात्रा की लयकारी हो। एक मात्रा में डेढ़ हो या 2 मात्रा में 3 बात एक ही है। इसी प्रकार कुआड़ लयकारी के अन्तर्गत एक मात्रा में सवा मात्रा या 4 मात्रा में 5 मात्रा आती हैं। यह लयकारियाँ कठिन मानी जाती हैं। आप यहाँ तालों में सीधी लयकारी करना जान सकेंगे। तालों के विषय में आप सम्पूर्ण परिचय जान चुके है अब तालों की दुगुन, चौगुन लयकारियाँ जानेंगे।

6.4.1 एकताल में लयकारियाँ :

ठेका

धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	कत ता	धागे तिरकिट	धी ना	धिं
X	0	2	0	3	4	X

एकताल की दुगुनः

धिंधिं धागेतिरकिट	तूना कतता	धागेतिरकिट धीना

X 0 2

धिंधिं धागेतिरकिट | तूना कतता | धागेतिरकिट धीना | धिं

0 3 4 X

तीनताल के समान एकताल की दुगुन लयकारी में भी प्रत्येक दो मात्राओं को एक कर दिया जाता है तथा विभागों में मात्रा की संख्या तथा विभागों का स्वरूप एक जैसा रहता है। बस ताल का ठेका दो बार प्रयोग में लाया जाता है। एकताल की दुगुन करने के लिए दूसरे प्रकार को भी प्रयोग में लाया जाता है, जिसमें एक आवर्तन में एकताल की दुगुन की जाती है।

<u>एक आवर्तन में एकताल की दुगुन :</u>

धिं धिं | धागे तिरकिट | तू ना | धिंधिं धागेतिरकिट | तूना कतता | धागेतिरकिट धीना | धिं

X 0 2 0 3 4 X

एकताल की दुगुन 7वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी तथा 6 मात्राओं में सम्पूर्ण होकर, दुगुन लयकारी आ जाएगी। इसमें एक आवर्तन का ही प्रयोग होगा अर्थात ठेका एक ही बार प्रयोग में आएगा।

<u>**एकताल की चौगुन लयकारी**</u> – एकताल की चौगुन के लिए चार बार ठेके की पुनरावृत्ति करनी होगी।

धिंधिंधागेतिरकिट तूनाकतता | धागेतिरकिटधीना धिंधिंधागेतिरकिट |

X 0

तूनाकतता धागेतिरकिटधीना | धिंधिंधागेतिरकिट तूनाकतता |

2 0

धागेतिरकिटधीना धिंधिंधागेतिरकिट | तूनाकतता धागेतिरकिटधीना | धिं

3 4 X

<u>एक आवर्तन में एकताल की चौगुनः</u>

धिं धिं | धागे तिरकिट | तू ना |

X		0	2		
कत	ता	धागे धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकतता	धागेतिरकिटधीना	धिं
0		3	4		X

एकताल की चौगुन 10वीं मात्रा से प्रारम्भ होगी तथा 3 मात्राओं में पूरी चौगुन आ जाएगी।

6.4.2 कहरवा ताल की लयकारियाँ :

ठेका

धा	गे	ना	ती	ना	क	धी	ना	धा
X				0				X

कहरवा ताल की दुगुन :

धागे	नाती	नाक	धीना	धागे	नाती	नाक	धीना	धा
X				0				X

एक आवर्तन में कहरवा ताल की दुगुन :

धा	गे	ना	ती	धागे	नाती	नाक	धीना	धा
X				0				X

कहरवा ताल की चौगुन :

धागेनाती	नाकधीना	धागेनाती	नाकधीना	धागेनाती	नाकधीना	धागेनाती	नाकधीना	धा
X				0				X

एक आवर्तन में कहरवा ताल की चौगुन :

धा	गे	ना	ती	ना	क	धागेनाती	नाकधीना	धा
X				0				X

दुगुन व चौगुन लयकारी में आप जान चुके हैं कि जो भी लयकारी करनी हो उतनी मात्राएँ एक मात्रा में समायोजित कर दी जाती है। जैसे दुगुन में दो मात्राओं को एक मात्रा बना देते हैं। इसी प्रकार तिगुन एवं चौगुन में क्रमशः तीन मात्रा एवं चार मात्राओं को एक बनाकर लयकारी की जाती है। लयकारी करते समय अधिक मात्राओं को एक मात्रा बनाते समय चिन्हों पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

अभ्यास प्रश्न

1) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

(i) लयकारी से आप क्या समझते है? किन्ही दो तालों की दुगुन व चौगुन लयकारी लिखिए।

2) लघु उत्तरीय प्रश्न :

(i) एक ताल की चौगुन लयकारी लिखिए।
(ii) कहरवा ताल की दुगुन लयकारी लिखिए।
(iii) लयकारी से आप क्या समझते हैं?

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) एकताल की चौगुन किस मात्रा से प्रारम्भ होगी?
(ii) चौगुन लयकारी में एक मात्रा में कितनी मात्रा समाहित होती हैं?
(iii) एकताल की चौगुन कितनी मात्राओं में पूर्ण रूप से आती है?

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि संगीत के अभिन्न अंग व तालों की उत्पत्ति रागों की रंजकता को बढ़ाने के लिए हुई है। वर्तमान समय में उत्तरी भारत में अनेकों ताल प्रचलित हैं। जैसे – तीनताल, एकताल, चारताल, झपताल, रूपक, धमार, दीपचन्दी आदि। ताल के योग से संगीत में रसानुभूति क्षणिक न रहकर परमानन्द प्राप्ति के साधन में सहायता करती है। पहले गीत रचनाओं एवं तालों से सम्बन्धित सभी अव्यवों को कंठस्थ करना पड़ता था परन्तु काललिपि पद्धति के आने से इस क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात हो गया। संगीत के अन्तर्गत आने वाली समस्त स्वर–ताल बद्ध रचनाओं में लय एवं ताल के समस्त अंगों को समझना बेहद आसान हो गया है। गीत रचनाओं में जिस लय एवं ताल में संगत होती है उसमें समान रूप से कायम रहना परम आवश्यक है। विशेष रूप से ख्याल गायन में ताल पक्ष के लिए 'तबला' वाद्य में संगत की जाती है तथा ध्रुपद गायन में 'पखावज' वाद्य में संगत की जाती है। विभिन्न तालों की लयकारी में विभिन्न लयों के मध्यम से चमत्कार का प्रदर्शन किया जाता है। लयकारी द्वारा गीत रचनाओं एवं तालों में कुछ नवीनता आ जाती है जिससे गायन–वादन में नवीन सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। इस इकाई के अध्ययन से आप लय–ताल एवं लयकारी के सम्बन्ध में सभी तत्वों के समुचित प्रयोग को समझ सकेंगे।

6.6 शब्दावली

- **थपिया बाज** : पखावज पर बजने वाली ताले खुले बोल की तालें होती हैं, जिन्हें थपिया बाज की ताल भी कहते हैं। पखावज वाद्य में थाप का विशेष महत्व है। गीला आटा लगाकर इसकी थाप में विशेष गूंज उत्पन्न हो जाती है। पूरी हथेली से बजने के कारण ही इसकी थाप का विशेष महत्व है और इसे थपिया बाज कहते हैं।
- **धमार गायन** : ध्रुपद एवं ख्याल गायन के मध्य अपनी स्थिति रखने वाला गायन धमार है। ध्रुपद शैली से गाया जाने वाला गीत का प्रकार धमार कहलाता है। विशेष रूप से राधा एवं कृष्ण इस गीत के गायक होते हैं तथा होली के अवसर पर ब्रज की होरी, राधा–कृष्ण एवं गोपियों की होरी, अबीर गुलाल, फाग, पिचकारियाँ, रंगों एवं भीगी चुनरियों का वर्णन इसमें होता है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.4 की उत्तरमाला :

2)रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

(क)उत्तर : खाली (ख) उत्तर : स्वतन्त्र वादन

3)एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) उत्तर : ख्याल गायन

2.5 की उत्तरमाला :

3) एक शब्द में उत्तर दीजिए :

(i) उत्तर : 4
(ii) उत्तर : 6 मात्राओं में
(iii) उत्तर : तीन मात्राओं में

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पंडित विष्णु नारायण, (1970), *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1 एवं भाग 2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1990), *राग परिचय भाग 2,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. गोवर्धन, श्रीमती शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2,* पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, (1993), *तबला प्रकाश भाग–1,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चन्द्र, (1994), *ताल प्रभाकर प्रश्नोत्तरी,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. कौर, डॉ0 भगवन्त, *परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत,* कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक ताल एवं कहरवा ताल का सम्पूर्ण परिचय देते हुए इनकी दुगुन एवं चौगुन की लयकारियाँ लिखिए।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**